आरोग्यम् स्वास्थ्य पत्रिका
Aarogyam Swasthya Patrika

जुलाई 2023 | आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः। | वर्ष 1, अंक 01

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् राजस्थान आयुर्वेद विश्वविद्यालय
कड़वड़, नागौर रोड, राष्ट्रीय राजमार्ग सं. 65, जोधपुर (राज.)
Phone : 0291-2795312, Fax : 0291-2795300
E-mail : rau_jodhpur@yahoo.co.in
Website : www.education.rajasthan.gov.in/home/dptHome/221

वैद्य राजेश कोटेचा, सचिव, आयुष मंत्रालय, भारत सरकार
द्वारा विश्वविद्यालय का अवलोकन

26 घण्टे अखण्ड़ सूर्य नमस्कार का आयोजन कर आयुर्वेद
विश्वविद्यालय ने रचा विश्व कीर्तिमान

मर्म चिकित्सा कार्यशाला ''मर्मज्ञ 2023'' का आयोजन

राजस्थान आयुर्वेद विश्वविद्यालय जोधपुर में अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस कार्यक्रम का सफल आयोजन

आरोग्यम् स्वास्थ्य पत्रिका

अनुक्रमणिका

1.	कुलपति सन्देश	2
2.	सम्पादकीय	3
3.	प्राणियों का प्राण आहार	4
4.	भोजन ही भेषज है	7
5.	खानपान व रहन सहन के सही नियम	9
6.	नेत्र रक्षा के आसान उपाय	11
7.	बारिश के मौसम में कैसे रखें अपनी सेहत का ख्याल	15
8.	ज्वर मीमांसा	17
9.	श्रीमद्भगवत् गीता एवं भययुक्त उद्वेग विकार चिकित्सा	21
10.	बच्चों में नॉन अल्कोहलिक फैटी लीवर रोग	24
11.	मानसिक स्वास्थ्य एवं किशोरावस्था	30
12.	मातृ स्वास्थ्य संरक्षण में आयुर्वेद की भूमिका	33
13.	एनीमिया (रक्त की कमी) : सम्पूर्ण स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाली एक व्यापक समस्या	36
14.	बालकों में सुवर्णप्राशन संस्कार–आयुर्वेद का वरदान	40
15.	उच्च रक्त चाप (हाई बीपी) एक गंभीर समस्या, कारण और बचाव के प्रति जागरूकता	43
16.	रोग प्रतिरोधक क्षमता एवम् आहार – विहार	46
17.	दुग्ध तथा दुग्ध उत्पादों के गुण कर्म तथा प्रयोगः आयुर्वेदीय दृष्टिकोण एवं वैज्ञानिक समीक्षा	48
18.	कविता	52

सम्पादक मण्डल

संरक्षक — प्रो. वैद्य प्रदीप कुमार प्रजापति, कुलपति

सह संरक्षक — श्रीमती सीमा कविया, कुलसचिव
श्री मंगलाराम विश्नोई, नियन्त्रक (वित्त)

सम्पादक — डॉ. राकेश कुमार शर्मा
निदेशक, मानव संसाधन विकास केन्द्र

सह सम्पादक — प्रो. महेन्द्र कुमार शर्मा, प्राचार्य – पीजीआईए
प्रो. गोविन्द सहाय शुक्ल, विभागाध्यक्ष – रसशास्त्र एवं भैषज्य कल्पना विभाग
डॉ. राजेश शर्मा, विभागाध्यक्ष – क्रिया शारीर विभाग

सहायक सम्पादक

आयुर्वेद	होम्योपैथी	योग	यूनानी
डॉ. हरीश कुमार सिंघल	डॉ. मनाली त्यागी	डॉ. चन्द्रभान शर्मा	डॉ. नाज़िया शमशाद
डॉ. देवेन्द्र चाहर	डॉ. राजेश कुमावत	डॉ. मार्कण्डेय सिंह	डॉ. सैयद मुजीबुर्रहमान
डॉ. मोनिका वर्मा	डॉ. तनुज राजवंशी	डॉ. विनोद गौतम	डॉ. फिरोज खान
डॉ. हेमन्त राजपुरोहित	डॉ. पुनीत शाह	डॉ. किशोरी लाल शर्मा	डॉ. मो. अकमल

कुलपति सन्देश

चिकित्सा नास्ति निष्फला

मरुभूमि के प्रवेश हेतु आरोग्यभूमि द्वार के रूप में सुशोभित डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् राजस्थान आयुर्वेद विश्वविद्यालय को आयुष के प्रथम भारतीय विश्वविद्यालय के रूप में प्रतिष्ठित होने का गौरव प्राप्त है। आज यह विश्वविद्यालय अपनी पूर्ण ऊर्जावान अवस्था में आयुष पद्धतियों के शिक्षण के केन्द्र के रूप में अन्य शिक्षण संस्थाओ के लिये आदर्श प्रतिमान के रूप में स्थापित है। विश्वविद्यालय में उत्तम शिक्षण व्यवस्था के साथ उच्च गुणवत्तापूर्ण शोध कार्य निरन्तर किये जा रहे हैं। चिकित्सीय सेवाओं के जनसामान्य तक अधिकाधिक प्रसार करने हेतु जोधपुर नगर के विविध स्थलों पर नियमित ओपीडी तथा जोधपुर नगरीय सीमा एवं सीमावर्ती ग्राम्य स्थानों पर निःशुल्क आयुष चिकित्सा शिविर आयोजित किये जा रहे हैं। यह अत्यन्त प्रसन्नता का विषय है कि बड़ी संख्या में हम आयुष चिकित्सा पद्धति को आमजनों तक पहुँचाने में सफल हुए हैं।

आज के परिप्रेक्ष्य में आयुष चिकित्सा पद्धतियों का जनसामान्य में उपयोग दैनंदिन वृद्धि को प्राप्त हो रहा है। इसके पीछे जनमानस में इन पद्धतियों के सुलभ चिकित्सा माध्यमों और इन पद्धतियों के अन्तर्गत चिकित्सा के निरापद होने से यह विश्वास निरन्तर प्रगाढ़ हो रहा है। हाल ही वैश्विक स्तर पर कोरोना महामारी के प्रसार के दौरान समस्त दुनिया ने इस रोग से बचाव हेतु आयुर्वेद व अन्य आयुष चिकित्सा पद्धतियों के माध्यम से इस विध्वंसक रोग से बचाव की क्षमता हो देखा है। इस कारण यह विश्वास भी बढ़ा है कि यदि इन पद्धतियों के माध्यम से इस महामारी से बचाव हुआ है तो निश्चित ही ये अन्य भी सभी प्रकार के रोगों में भी निरापद रूपेण प्रभावी तौर पर सक्षम है। दिन प्रतिदिन पंचकर्म, क्षारसूत्र, अग्निकर्म, जलौकावचारणा, मर्म चिकित्सा, स्वर्णप्राशन, योग, ध्यान आदि आयुर्वेद में प्रचलित चिकित्सा विधाओं का विविध रोगों के निराकरण एवं स्वास्थ्य संरक्षण में उपयोग तीव्र गति से बढ़ रहा है और लोग इनका निरन्तर विश्वसनीय चिकित्सा लाभ कर रहे हैं।

विविध प्रकार के उपक्रमों के संयोजन के साथ ही उन उपक्रमों का प्रमाणित एवं प्रयोगात्मक ज्ञान भी विज्ञान के प्रसार में सहायक है। लम्बे समय से आयुर्वेद विश्वविद्यालय के द्वारा स्वास्थ्यपरक पत्रिका के रूप में प्रकाशन की महति आवश्यकता अनुभव की जा रही थी और इस हेतु निष्ठापूर्वक प्रयास भी जारी थे। सभी सार्थक प्रयासों के परिणामस्वरूप अधुना आज मुझे अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है कि विश्वविद्यालय की स्वास्थ्य पत्रिका आज आप सभी सुधीजनों के सम्मुख अवलोकनार्थ प्रस्तुत है ।

इस स्वास्थ्य सम्बंधी पत्रिका के माध्यम से आयुर्वेद, होम्योपैथी, यूनानी, योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा से सम्बन्धित अनेक महत्त्वपूर्ण शोध कार्य, विषय तथा आयुष पद्धतियों के सामान्य सिद्धान्त तथा इन पद्धतियों से जुड़ी महत्त्वपूर्ण जानकारियां न केवल चिकित्सा क्षेत्र के लोगों अपितु आमजन को भी लाभान्वित करेंगी। आयुष पद्धतियों के अन्तर्गत कार्यरत अनुसन्धाताओं और अध्येताओं के लिये भी यह पत्रिका उपादेय होगी, ऐसा मेरा विश्वास है। मै इस पत्रिका के प्रकाशन एवं सम्पादन कार्य करने वाली टीम के सदस्यों को हार्दिक शुभकामनाएँ प्रेषित करता हुँ तथा यह भी आशा करता हूँ कि यह पत्रिका इसी प्रकार गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सामग्री का प्रकाशन करते हुए सुधि पाठकों का निरन्तर ज्ञानवर्द्धन करती रहेगी।

प्रो. (वैद्य) प्रदीप कुमार प्रजापति
कुलपति

सम्पादकीय

डॉ सर्वपल्ली राधाकृष्णन् राजस्थान आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्वास्थ्य पत्रिका के प्रथम अंक को आपके सम्मुख प्रस्तुत करते हुए अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। विश्वविद्यालय न केवल आयुर्वेद शिक्षण विधा में अपना परचम लहरा रहा है, अपितु यहां के विशेषज्ञ चिकित्सकों द्वारा निरन्तर आयुर्वेद चिकित्सा एवं स्वास्थ्य संरक्षण के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किये जा रहे हैं। सम्पूर्ण भारत ही नहीं अपितु विश्व भर से लोग यहां चिकित्सा के लिये आ रहें हैं और आरोग्य लाभ से उपकृत हो रहें हैं। विश्वविद्यालय परिसर में विश्वस्तरीय पंचकर्म केन्द्र का निर्माण कार्य तीव्र गति से प्रगति पर है।

इन विशिष्टताओं के साथ–साथ हमारे विश्वविद्यालय परिवार का समस्त शैक्षणिक वर्ग साहित्यिक सम्पदा को समृद्ध करने एवं इसके प्रचार–प्रसार में भी अग्रणी भूमिका निभा रहा है। विश्वविद्यालय के शिक्षकों की विविध विषयों पर अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और कई पुस्तकें प्रकाशनाधीन हैं। इसके अतिरिक्त प्रतिष्ठित गहन अनुसन्धान एवं अनुशीलन के परिणामस्वरूप विभिन्न राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्र–पत्रिकाओं में भी निरन्तर गुणवत्तापूर्ण शोधपत्र प्रकाशित करवाये जा रहे हैं।

सुदीर्घ काल से हम सभी की यह उत्कट कामना थी कि विश्वविद्यालय एक उत्कृष्ट कोटि की स्वास्थ्य पत्रिका का प्रकाशन करे जिसके माध्यम से समाज को चिकित्सा एवं स्वास्थ्य से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण एवं नवीनतम जानकारियां उपलब्ध करवाई जा सकें। विश्वविद्यालय परिवार के शुभसंकल्प और इसके लिये किये गये अथक परिश्रम के परिणामस्वरूप आज इस पत्रिका का प्रकाशन साकार हो रहा है। इस ऐतिहासिक कार्य हेतु माननीय कुलपति प्रो. (वैद्य) प्रदीप कुमार प्रजापति एवं पूर्व कुलपति प्रो. (डॉ.) अभिमन्यु कुमार जी की निरन्तर प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्रमुख आधार स्तम्भ है।

स्वास्थ्य पत्रिका हेतु सम्पादक मण्डल के सभी आयुर्वेद, होम्योपैथी, यूनानी तथा योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा महाविद्यालय के सदस्यों द्वारा शोध आलेखों के संकलन, प्रूफ रीडिंग, संशोधन तथा डिजाइनिंग आदि से सम्बन्धित प्रकाशन प्रक्रिया एवं कार्य–कलाप में सहयोग के लिए हार्दिक आभार। आप सभी के निरन्तर सहयोग और परामर्श का सुफल इस पत्रिका के प्रकाशित स्वरूप में निखर कर सामने आया है। मैं सभी के लिये अन्तर्मन की गहराईयों से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं।

शीघ्र ही इस पत्रिका के आगामी अंक के माध्यम से नवीन सामग्री तथा कलेवर के साथ पुनः आपसे मुलाकात होगी।

डॉ. राकेश कुमार शर्मा
सम्पादक

प्राणियों का प्राण आहार

राष्ट्रपति सम्मानित प्रो. वैद्य बनवारीलाल गौड

दार्शनिक दृष्टि से विचार करें तो यह शरीर 24 तत्त्वों या 25 तत्त्वों का बना हुआ है जिसकी दर्शन–शास्त्रों की दृष्टि से विस्तृत व्याख्या की गई है लेकिन सामान्य बोलचाल की भाषा में कहते हैं कि यह शरीर पंचमहाभूतों से बना हुआ है। आयुर्वेद में भी पंचमहाभूतों के साथ आत्मा के संयोग को जीवित शरीर स्वीकार किया गया है। इसकी"शरीर" संज्ञा इसलिए है कि इसमें निरंतर कुछ न कुछ शीर्णन अर्थात्क्षय होता रहता है, अतः इसकी पूर्ति के लिए आहार ही एकमात्र साधन है ।

यह शरीर ही नहीं अपितु सम्पूर्ण सृष्टि पाञ्चभौतिक है अतः शरीर में जो कुछ भी क्षय होता है उसकी पूर्ति के लिए प्राणी इस सृष्टि में स्थित पञ्चमहाभूतों के तत्त्वों से पूर्ति करता है। यह एक सामान्य प्रक्रिया है जिससे प्राणी निरन्तर शरीरस्थ क्षय की पूर्ति करता हुआ जीवनपर्यंत प्राणयात्रा सम्पादित करता है, लेकिन इसके लिए यह आवश्यक है कि जितना क्षय हुआ है उसकी पूर्ति के लिए उसी अनुपात में आहार में उन तत्त्वों का ग्रहण किया जाना चाहिए, यदि इससे कम या अधिक उन तत्त्वों को आहार के माध्यम से या अन्य किसी भी माध्यम से गृहीत किया जाता है तो वे शरीर में दोषों एवं धातुओं का वैषम्य उत्पन्न करके विकार उत्पन्न कर देते हैं ।

शरीर में इस प्रकार की व्यवस्था है कि जिस किसी भी तत्त्व की कमी होती है तो शरीर उस कमी की पूर्ति के लिए लक्षणों के माध्यम से प्रार्थना करता है वह जिन लक्षणों को प्रकट करता है वे दो प्रकार के होते हैं– एक लक्षण ऐसे होते हैं जिन्हें प्राणी स्वयं अनुभूत करता है, जैसे– भूख, प्यास इत्यादि । लेकिन कुछ लक्षण ऐसे होते हैं जिन्हें व्यक्ति स्वयं किसी न किसी रूप में अनुभूत तो करता है लेकिन सम्पूर्ण रूप से वह उन्हें जान नहीं पाता है, इसके लिए विशेषज्ञ अपने ज्ञान, अनुभव और विशिष्ट साधनों से उन लक्षणों के माध्यम से इस बात का ज्ञान करता है कि शरीर में किस तत्त्व की कमी हुई है । अतः इन दोनों ही स्थितियों में प्राणी उन उन तत्त्वों को आहाररूप में या औषध–रूप में करके शरीर में स्थित उन विशिष्ट तत्त्वों की कमी को दूर करता है ।

शरीर के प्रतिदिन होने वाले क्षय के लिए सबसे प्रमुख साधन आहार है जिसे व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार ग्रहण करता है, लेकिन इस इच्छा में उसका परिणामपरक स्वयं का अनुभव एवं परम्परागत आहार के ग्रहण का स्वरूप नियत रहता है । यह देश, काल एवं परिस्थिति के अनुसार उसके प्रभाव को जानकर सुनिश्चित किया जाता है । आहार सर्वदा एक ही प्रकार का ग्रहण नहीं किया जाता, इसमें विभिन्न परिस्थितियां प्रभावी होती हैं। यदि व्यक्ति नियमित रूप से व्यवस्थित आहार को ग्रहण करता रहे तो उससे वह सर्वदा अपने शरीरस्थ तत्त्वों को एक नियत मात्रा में बनाए रखने में सफल होता है ।

आहार को प्राणियों का प्राण कहा गया है। वह प्रत्येक शरीर के अंदर स्थित जाठराग्नि को ध्यान में रखकर उसके अनुरूप किया जाता है । वर्तमान काल में आहार को ग्रहण करने में कुछ विशेष प्रकार के दोष समाविष्ट हो गए हैं जिनके कारण व्यक्ति का स्वास्थ्य व्यवस्थित नहीं रह पाता है, अतः नियत आहार को व्यवस्थित रूप से ग्रहण करना परमावश्यक है, इसके लिए दो बातें परिपालनीय हैं :–

1. अनुकूल आहार 2. विधिविहित आहार

1. अनुकूल आहार–

i. **मात्रावान् आहार**– बल, आरोग्य, आयु और प्राण ये सभी शरीरस्थ जाठराग्नि के आश्रित रहते हैं, जाठराग्नि यदि व्यवस्थित है तो गृहीत किए गए आहार के माध्यम से ये सभी शरीरस्थ तत्त्व पुष्ट होकर प्राण को व्यवस्थित रखते हैं अतः यह आवश्यक है कि जाठराग्निको ध्यान में रखकर मात्रापूर्वक आहार किया जाना चाहिए। यह प्रत्येक व्यक्ति के लिए पृथक्–पृथक् स्वरूप का है, सभी के लिए सर्वदा एक ही मात्रा निश्चित नहीं की जा सकती । अतः कितनी मात्रा में आहार लिया जाए इसका निश्चय व्यक्ति आहार के ग्रहण करने के बाद होने वाले परिवर्तनों के आधार पर स्वयं निश्चित करता है ।

उपयुक्त मात्रा वह मानी जाती है जो एक नियत मात्रा में आहार कर लेने के बाद वह शरीर की प्रकृति को किसी भी प्रकार से हानि पहुंचाए विना एक नियत समय पर पाक को प्राप्त हो जाए। अपने इस लक्षण के आधार पर व्यक्ति अपने आहार की मात्रा स्वयं निश्चित कर लेता है, यह उसे परिस्थितियों के अनुसार बार–बार करना पडता है, जैसे– अधिक व्यायाम, परिश्रम आदि करने पर उसकी जाठराग्नि तीव्र होती है अतः उसे अधिक मात्रा में आहार लेना पड़ता है तथा देश और ऋतु के अनुसार भी अग्नि के तीव्र या मंद होने का प्रभाव पड़ता है, जैसे– सर्दियों में अग्नि तीव्र होती है और गर्मी एवं बरसात में अग्नि मन्द रहती है। इसी तरह शीत देशों में एवं युवावस्था में अग्नि तीव्र होती है और उष्ण प्रदेशों में तथा वृद्धावस्था में अग्नि देश एवं वय के प्रभाव से मंद होती है, अतः उसी के अनुरूप आहार ग्रहण किया जाता है ।

पूर्व कुलपति, डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् राजस्थान आयुर्वेद विश्वविद्यालय, जोधपुर
पूर्व निदेशक, राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, जयपुर

इस स्वरूप को व्यक्ति स्वयं ही अनुभूत कर सकता है, इसके लिए एक सामान्य नियम यह भी है कि व्यक्ति अपने उदर को ध्यान में रखकर उसके काल्पनिक रूप से 3 भाग सुनिश्चित करले, इसमें केवल एक भाग को ही मूर्त (ठोस) आहार–द्रव्यों से पूरित करे। मूर्त आहार में दाल, चावल, रोटी, लड्डू, हलुआ, विभिन्न शाक एवं मांसाहार आदि सभी खाद्य पदार्थों का ग्रहण हो जाता है । इसके अतिरिक्त एक भाग द्रव–द्रव्यों के लिए नियत कर ले, इसमें पानी, दूध, छाछ आदि पेय–पदार्थों का ग्रहण होता है तथा तीसरा भाग खाली छोड़ दे, इस प्रकार से आहार करने वाला व्यक्ति आहार की मात्रा से कभी दुःखी नहीं होता।

भोजन सर्वदा मात्रापूर्वक ही करना चाहिए मात्रापूर्वक किया गया भोजन वात, पित्त एवं कफ इन तीनों दोषों को पीड़ित किए विना आयु की अभिवृद्धि करता है तथा सुखपूर्वक इसके प्रसादभाग एवं मलभाग का विभाजन होकर प्रसादभाग धातुओं की वृद्धि के लिए यथास्थान चला जाता है जबकि मलभाग का मूत्र और पुरीष के माध्यम से विसर्जन कर दिया जाता है ।

ii. गुरु एवं लघु का विचार–

गुरु भोजन सामान्यतया आधी मात्रा में ही करना उपयुक्त रहता है तथा लघु भोजन भी बहुत अधिक मात्रा में प्रयुक्त करना उपयुक्त नहीं रहता ।

iii. हितकर भोजन –

भोजन अच्छी लगने वाली गन्ध वाला, अच्छे वर्णवाला, अच्छे रस वाला और स्पर्श में भी अच्छा होना चाहिए । इस तरह का भोजन करने पर मन प्रसन्न रहता है। साठी चावल, शालि चावल, मूंग,सैन्धव नमक, आंवला,जौ, घी, दूध, शहद, विशुद्ध जल इनका निरंतर मात्रापूर्वक सेवन करना हितकर होता है । दही एवं छाछ विधिपूर्वक देशकाल और शरीर को ध्यान में रखते हुए प्रयुक्त किए जा सकते हैं । शाक और फल सर्वदा ऋतुजनित ही प्रयुक्त किए जाने चाहिए । इसी प्रकार से जिस ऋतु में जो अन्न उत्पन्न होकर प्राप्त होता है उसका विधिपूर्वक सेवन किया जाना चाहिए। गेहूं का निरंतर नियमित प्रयोग न करना ज्यादा उपयुक्त है । चना, मक्का, ज्वार, रागी, बाजरा आदि का प्रयोग उचित ऋतु में परम्परागत रूप से जिस प्रकार से किया जाता है उस तरह से करना अधिक हितकर है ।

iv. निषिद्ध भोजन –

वर्तमान काल में खानपान में अत्यधिक परिवर्तन आ गया है जिसमें फास्ट फूड, पैक्ड फूड एवं रेडी टू ईट का अत्यधिक प्रचलन हो गया है । इन सभी में भोजन को अधिक समय तक संरक्षित रखने के लिए अनेक हानिकारक रासायनिक पदार्थों का मिश्रण किया जाता है, अतः इनका प्रयोग सर्वदा ही हानिकारक होता है। इनसे जितना अधिक बचा जा सके उतना बचना चाहिए।

आयुर्वेद के प्राचीन आचार्यों ने भोजन के निषेधात्मक स्वरूप में कहा है कि गरिष्ठ भोजन, पीठी के बने पदार्थ(मूंग इत्यादि को भिगोकर उनसे पीस कर बनाए गए या मैदा के बनाए हुए पदार्थ) और चिवड़े ये कभी भी भोजन करने के बाद नहीं खाने चाहिए। इन्हें यदि खाना हो तो मात्रापूर्वक भोजन के साथ ही ले तथा उस अनुपात में भोजन कम लेना चाहिए। इसके अतिरिक्त मांस, पनीर, मछली, दही और उड़द आदि का निरंतर अभ्यासपूर्वक अधिक सेवन नहीं करना चाहिए यदा–कदा सेवन करना निषिद्ध नहीं है। आजकल अधिकांश लोग रात को दही खाते हैं जबकि रात को दही खाना पूर्णतया निषिद्ध है ।

2. विधिविहित आहार–

i. भोजन की विधि –

भोजन करने से पहले स्वच्छ वस्त्र धारण करने चाहिए एवं हाथ–पैरों का अच्छी प्रकार से प्रक्षालन करने के बाद ही पवित्र स्थान एवं पवित्र आसन पर बैठकर भोजन करना सर्वदा हितकर होता है।

ii. भोजन करने संबंधी कुछ नियम –

भोजन सर्वदा उष्ण ही करना चाहिए, उष्ण का तात्पर्य है ताजा बना हुआ और जिसे सामान्यतया उष्ण रूप में ही खाया जाता है वह भोजन, यह भी बहुत अधिक गर्म नहीं होना चाहिए अपितु सुखोष्ण होना चाहिए, इस तरह का किया गया उष्ण भोजन करते समय स्वादिष्ट लगता है, भोजन करने के बाद अग्नि को अनुकूल रूप में अभिवृद्ध करता है, जल्दी ही यथासमय जीर्ण हो जाता है (पच जाता है) तथा वायु का अनुलोमन करता है और बढे हुए श्लेष्मा का ह्रास करता है।

भोजन स्निग्ध करना चाहिए । रोटी, चावल, दाल, शाक इत्यादि आहारद्रव्यों के साथ यथावश्यक रूप से जिसमें जो उपयुक्त हो उसके अनुसार घी, मक्खन तेल आदि का प्रयोग करना चाहिए। इस प्रकार से किया गया भोजन स्वादिष्ट लगता है तथा अग्नि को बढाता है, यथासमय जीर्ण हो जाता है । यह भी वायु का अनुलोमन करता है। शरीर को पुष्ट करता है, इन्द्रियों को दृढ करता है, शरीर के बल की वृद्धि करता है और त्वचा के में निखार लाता है।

वर्तमान में आधुनिक वैज्ञानिकों के द्वारा कुछ समय पूर्व अपने अनुसंधानों से इस प्रकार का प्रचार कर दिया था कि

शरीर में गई हुई चिकनाई घी–तैल इत्यादि हानि करते हैं, लेकिन भारतवर्ष के लिए यह कहना उपयुक्त नहीं है, क्योंकि जिस प्रक्रिया से भारत में दही से घी निकाला जाता है वह हानिकारक नहीं है लेकिन सीधा दूध में से जो घी निकाला जाता है वह जरूर कुछ सीमा तक हानिकारक है। जो व्यक्ति जितना मक्खन घी–तैल इत्यादि भोजन के साथ लेता है और वह उसी अनुपात में यदि श्रम करता है तो यह किसी भी प्रकार से हानि नहीं करते अपितु लाभ ही करते हैं। इसलिए निश्चित रूप से एक नियत मात्रा में घी–तैल का भोजन में प्रयोग करना ही चाहिए। यह भारतीय परम्परा है जो हजारों वर्षों से चली आ रही है और यह किसी भी प्रकार से हानिकारक नहीं है। अभी इन्हीं आधुनिक वैज्ञानिकों ने नए अनुसंधान में यह पाया है कि दही से निकाला गया मक्खन और घी हानिकारक नहीं होते हैं। भारत में इस प्रकार का मक्खन और घी हजारों सालों से प्रचलित रहा है,इसका प्रयोग निश्चित रूप से करना ही चाहिए।

पहले का भोजन जीर्ण हो जाए उसके बाद ही भोजन करना चाहिए, ऐसा भोजन शरीर के लिए सर्वदा लाभदायक रहता है। एक बार भोजन करने के बाद कम से कम 3 घंटे तक कुछ भी नहीं खना चाहिए। बार–बार थोड़ा–थोड़ा खाते रहने से पेट के रोग उत्पन्न होते हैं। इसलिए नियत समय पर नियत मात्रा में भोजन करना सर्वदा लाभदायक रहता है। अन्न का अनादर नहीं करे, झूठा नहीं छोडे, सर्वदा तन्मय होकर भोजन करना चाहिए।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि आहार का जो परम्परागत स्वरूप है और जो परम्परागत विधि है उसका परिपालन किया जाना चाहिए, क्योंकि यह परम्परा वर्षों के अनुभव से देश, काल परिस्थिति आदि को ध्यान में रखकर सुनिश्चित की गई है। नियत समय पर मात्रापूर्वक किया गया परम्परागत भोजन सर्वदा हितकारी होता है यही शरीर का स्वास्थ्यानुवर्तन करता है जिससे शरीर पुष्ट होता हुआ जीवनपर्यंत अवस्थानुसार बलवान् बना रहता है, इसीलिए उपयुक्त आहार को प्राणियों का प्राण कहा गया है।

भोजन ही भेषज है

प्रो. कमलेश कुमार शर्मा

भारतीय ज्ञान परंपरा में भोजन को ब्रह्म स्वरूप बताया गया है। पांचवें वेद आयुर्वेद ने भोजन को प्राण बताया है। आयुर्वेद कहता है कि जीवन यात्रा का संचालन करने के लिए जो तीन प्रमुख स्तंभ हैं उनमें से एक आहार है। संसार की जितने भी चिकित्सा पद्धतियां हैं उनमें से आयुर्वेद ही एक ऐसी चिकित्सा पद्धति और जीवन विज्ञान है जो बीमार होकर चिकित्सा लेने के बजाए बीमार ना होने को ही प्राथमिकता देता है, और उसके लिए अपनी जीवनशैली को प्राकृतिक बनाए रखने का परामर्श देता है. इसी जीवन शैली में खानपान रहन–सहन और आचार विचार का समावेश होता है। इन तीनों में भी खानपान का अपना विशेष महत्व है क्योंकि यह शरीर मन और आत्मा तीनों को प्रभावित करता है।

आहार या भोजन को लेकर समाज में प्रचलित विभिन्न प्रकार की कहावतें भी इसके महत्व को रेखांकित करती हैं–

जैसा खाए अन्न वैसा होगा मन

शारीरिक सौष्ठव को देख कर के भी व्यक्ति के भोजन का अनुमान किया जाता है। तात्पर्य यह है कि शरीर और मन दोनों का पोषण हमारे भोजन के द्वारा ही होता है, ऐसे में जन सामान्य को भी इस बात की जानकारी होनी चाहिए कि वह भोजन कब, कैसा, कितना और कैसे करे? इस आलेख में हम इन्हीं बातों पर विचार करते हैं।

भोजन कब करें ?

आयुर्वेद साधारणतया दो समय भोजन करने का परामर्श देता है, भारत भूभाग पर सदियों से दो समय भोजन की ही परंपरा चली आ रही है. अब जब दो समय ही भोजन करना है तो फिर इसका समय क्या होना चाहिए इस पर भी तार्किक रूप से आयुर्वेद परामर्श देता है। भोजन का समय नियत करने में शरीर की अग्नि, दोषों की स्थिति और प्रकृति में होने वाले परिवर्तन का भी ध्यान रखा जाता है। भोजन का पाचन करने में जिन दोषों की प्रधानता रहती है उन दोषों की भूमिका को ध्यान में रखते हुए भी आयुर्वेद भोजन के समय को निर्दिष्ट करता है।

साधारणतया दिन का पहला भोजन सूर्योदय के पश्चात एक प्रहर बीत जाने परंतु दूसरा प्रहर समाप्त हो जाने से पहले किया जाना चाहिए, अर्थात सूर्योदय अगर 6 बजे मानें तो प्रथम प्रहर 9 बजे बाद से लेकर के द्वितीय प्रहर का समापन 12 तक होता है ऐसे में 9 से 12 बजे के बीच में पहला प्रमुख भोजन हो जाना चाहिए. इसी प्रकार रात का भोजन भी दिन के अंतिम प्रहर या रात्रि के प्रथम प्रहर में हो जाना चाहिए, जो लगभग सायंकाल 5 से 8 बजे के बीच बैठता है।

इसी बात की पुष्टि करने के लिए हारवर्ड स्थित मेडिकल स्कूल ने संसार भर के कुछ लोगों पर अध्ययन करके पाया कि जो लोग सुबह 9:00 बजे से शाम 6–7 बजे के बीच ही कुछ खाते पीते हैं उन लोगों का स्वास्थ्य अच्छा रहता है और वे दीर्घायु होते हैं, इनका यह अनुसंधान भी आयुर्वेदिक दृष्टि को वैज्ञानिक रीति से पुष्ट करता है।

इसी प्रसंग में एक बात और ध्यान कर लेने की है एक बार भोजन करने के पश्चात कम से कम एक प्रहर यानी 3 घंटे और अधिकतम 2 प्रहर का अंतराल अवश्य दिया जाना चाहिए, आज की जीवन शैली में बार–बार थोड़ा–थोड़ा खाने का जो चलन चला है वास्तव में यह हमारी जाठराग्नि के लिए नुकसानदेह होता है।

भोजन कैसा करें

भारत भूमि पर उत्पन्न हुए सभी विज्ञान, मत, पंथ शाकाहार की पैरवी करते हैं। शारीरिक संरचना की दृष्टि से भी मानव का पाचन तंत्र शाकाहार के लिए ही उपयुक्त है।

श्रीमद्भगवद्गीता में भी भगवान श्रीकृष्ण ने जिस सात्विक आहार का निर्देश किया है वस्तुतः वही सामान्य जन का भोजन होना चाहिए।

बढ़ते औद्योगिकीकरण और बाजारवाद के कारण आज जनसामान्य की थाली भी बाजार के हवाले हो गई है, इस कारण से हमारी थाली में क्या आएगा यह हम या हमारे घर की गृहिणी तय नहीं करके बाजार तय करने लगा है, उसी का दुष्प्रभाव है कि बाजार में मिल रहे राजसिक और तामसिक भोजन के कारण व्यक्ति व्यक्ति का तन और मन दोनों ही अस्वस्थ रहने लगा है और जीवनशैली जनित रोगों की भरमार हो गई है, वैश्वीकरण के नाम पर बाजार ने संसार की हर खाद्य(अखाद्य) वस्तु को हर व्यक्ति की थाली में पहुंचाने का षड्यंत्र किया है। ऐसे में यह जरूरी हो जाता है कि हम अपने पारंपरिक खाद्यान्न और खाद्य– रेसिपीज की और लौट चलें। अपने आसपास पैदा होने वाले धान्य और जिस ऋतु में जो पैदा हो रहे हैं ऐसे धान्य शाक और फल का सेवन करना हमारे स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद होता है इसके लिए एक अंग्रेजी में मंत्र है – अकॉर्डिंग टू

प्रो–वाइस चांसलर, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर।
पूर्व विभागाध्यक्ष, स्वस्थवृत्त एवम् योग विभाग, राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, जयपुर।

सीजन अकॉर्डिंग टू रीजन अर्थात अपने क्षेत्र में जो पैदा हो रहे है वे और जिस ऋतु में पैदा हो रहे हैं वे खाद्य खाने योग्य हैं। आजकल परस्पर विरुद्ध वस्तुओं के खाने का भी (अज्ञानता या जीभ के स्वाद के कारण) चलन बढ़ गया है, खट्टा मीठा मीठा नमकीन ठंडा गरम ऐसे परस्पर विरुद्ध खानपान से बचना चाहिए. क्या खाना इस संदर्भ में इन बातों का हमें अवश्य ध्यान रखना चाहिए।

कैसे खाना

न हंसते हुए, न बोलते हुए, न मोबाइल और कंप्यूटर काम लेते हुए, न टीवी देखते हुए अर्थात पूरी तरह से दत्तचित्त होकर भोजन करने से उसका उत्तम रस बनता है जो शरीर की समस्त धातुओं का पोषण करता है। वस्तुतः आहार ग्रहण करने को भी हमारे यहां यज्ञ का ही रूप बताया गया है, हम जो भोजन कर रहे होते हैं वह भी एक प्रकार का यज्ञ ही है।

कितना खाना

आधुनिक आहार शास्त्रियों ने कैलोरी की कल्पना करके आहार की मात्रा निश्चित की है परंतु उससे भी कहीं अधिक वैज्ञानिक तर्कपूर्ण आयुर्वेद की आहार मात्रा निर्धारण की प्रक्रिया है।

हमारे आमाशय (पेट) के तीन हिस्से मानते हुए 1 भाग में ठोस, दूसरे भाग में द्रव तथा तीसरे भाग को वायु के आवागमन के लिए रिक्त छोड़ना चाहिए।

इसे यूं भी समझ सकते हैं कि पहले भोजन काल में जो भोजन किया है वह अगले भोजन काल तक ठीक प्रकार से पच जाए आहार की वही मात्रा उपयुक्त होती है। भोजन की मात्रा तय करते समय भोजन के घटकों की गुरुता और लघुता का विचार भी जरूरी हो जाता है। खील और खीर दोनों बराबर मात्रा में खाना उचित नहीं, अतः अपनी पाचन क्षमता का विचार करते हुए ही भोजन की मात्रा तय करना उचित होता है।

भोजन के संबंध में हम इन छोटी–छोटी बातों का ध्यान रखते हुए भोजन करने के उद्देश्य को भी पूरा कर लेते हैं, और विषम भोजन से उत्पन्न होने वाली व्याधियों से भी बच सकते हैं।

खानपान व रहन सहन के सही नियम

प्रो. अनूप कुमार गक्खड़

हम शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ रहें, इसके लिए हमारे अपने खानपान व जीवनशैली का सही होना आवश्यक है। हमारा स्वास्थ्य हमारी दिनचर्या व हमारी जीवन शैली पर आधारित होता है। अज्ञानतावश अथवा परिस्थितिवश खानपान के बारे में कुछ धारणाओं ने समाज में ऐसा स्थान बना लिया है कि जो गलत होते हुए भी हमारी जीवन शैली का एक अंग बन चुकी है। वे हमारे स्वास्थ्य के लिये ठीक नही है। इनकी सही जानकारी होना आवश्यक है।

यथा आम का मौसम शुरु हुया नही कि सेहत बनाने के चक्कर में मेंगों शेक के नाम पर दूध और आम का इकट्ठा प्रयोग करना प्रयोग शुरु करवा देते हैं। आयुर्वेद अनुसार दूध के साथ न केवल आम, अपितु केला, नारियल, बेर, अखरोट, अनार, कटहल व आवंले का प्रयोग नही करना चाहिए। आयुर्वेद में इसे विरुद्ध आहार कहा गया है और विरुद्ध आहार के सेवन से मूर्च्छा, आफरा, जलोदर अर्थात् पेट में पानी भर जाना, उन्माद अथवा पागलपन, भगन्दर, पाण्डु अर्थात खून की कमी होना, कुष्ठ, संग्रहणी, शोष अर्थात् सूखारोग के कारण शरीर का सूखना, ज्वर, पुराना जुकाम, नपुंसकता व अन्धापन जैसे रोग हो सकते है। व्यवहार में प्रचलित दूध और केले के शेक का सेवन उचित नहीं है।

इसी तरह मोटापा कम करने के चक्कर में सुबह–सुबह शहद को गर्म पानी के साथ पीना बहुत से लोगों की दिनचर्या का हिस्सा है। शहद को गर्म पानी में मिलाकर पीना रोगों को निमंत्रण देने के समान है। शहद को गर्म वस्तु के साथ सेवन करना विरुद्ध आहार है। हां, ताजे पानी में पुराना शहद मिलाकर प्रयोग करना मोटापा कम करने में सहायक होता है। इसी तरह ताकतवर बनने के चक्कर में शहद और घी बराबर मात्रा में सेवन करने से लेने के देने पड़ जाते है। समान मात्रा में देसी घी व शहद का प्रयोग भी विरुद्ध आहार ही होता है। जो व्यक्ति रोज व्यायाम करता है, बलवान है व जिसकी जठराग्नि प्रबल है व चिकनायी युक्त भोजन करता है उसको विरुद्ध आहार कष्ट नही देता या अल्प कष्ट देता है ।

हमें बचपन से ही पढ़ाया जाता है कि हमें हरी सब्जियां अधिक से अधिक खानी चाहिए। पश्चिमी देश के लोगों का प्रमुख भोजन मांस व ब्रेड होता है। उसमें रेशे की कमी होती है। वहॉ के लोगों के लिये हरी सब्जियों का सेवन अधिक करना उचित है। जो ज्ञान पश्चिमी देशों से आए वह पवित्र और सही होता है, ऐसा माना जाता है। उसी सोच पर उन देशों में पालन करने योग्य नियमों का बिना अपनी स्थिति एवं वातावरण देखे उन का पालन हम अपने देश में करते है। हमारे देश में खाए जाने वाले भोजन में रेशे की कमी नही है। आयुर्वेद के ग्रन्थों में उसी भोजन को श्रेष्ठ कहा है जिसमें शाक की बहुलता न हो। शाक का पाचन कठिनायी से होता है।

एक धारणा है कि दही रोज खाना सेहत के लिये अच्छा होता है जबकि आयुर्वेद मे ंकहा गया है कि साल में छः मास दही नही खानी चाहिए। केवल वर्षा, हेमन्त व शिशिर ऋतुओं में ही दही का प्रयोग श्रेष्ठ फलदायी होता है। रात को तो किसी भी ऋतु में दही नही खानी चाहिए। दही को गर्म करके तो बिल्कुल नही खाना चाहिए। रात में दही में अलक्ष्मी का वास बताया है व इसके सेवन से शरीर के स्रोतस का अवरोध होता है। इसके अनुचित सेवन से ज्वर, रक्तपित्त, कुष्ठ, चक्कर आना, पाण्डु ,कामला जैसे रोग होते है।

अधिक पानी पीने से शरीर की सफायी होती हैं, इस प्रकार की धारणा से बहुत से लोग ग्रसित रहते है। आयुर्वेद अनुसार केवल ग्रीष्म एवं शरद ऋतु ही ऐसी ऋतुएं हैं जब इच्छानुसार पानी पिया जा सकता हैं जबकि शेष ऋतुओं में अधिक पानी पीने का निषेध है। जिस व्यक्ति के खून में खराबी हो, बेहोशी जैसी हालत हो रही हो, शरीर में जलन होती हो, किसी जहरीली वस्तु का सेवन किया हो या अलकोहल का प्रयोग किया होता है उनको ठण्डे पानी का ही प्रयोग करना चाहिए। प्रमेह, पुराना जुकाम, उदररोग, दस्त लगे होने पर, शोथ, ग्रहणीरोग व अर्श अर्थात् बवासीर में पानी कम पीने का निर्देश है।

आयुर्वेद के ग्रन्थों के अनुसार भोजन से पहले पानी पीना शरीर को पतला बनाता है जबकि भोजन के बाद पानी पीने से शरीर मोटा होता है। भोजन के साथ थोड़ा–थोड़ा करके पानी पीना उचित होता है।

इसी तरह भोजन करते समय मीठा सबसे पहले ,उसके बाद खट्टी व नमकीन वस्तुएं व बाद में तीखी कड़वी व कसैली वस्तुएं लेनी चाहिए, इससे भोजन का पाक ठीक प्रकार से होता है। भोजन के शुरु में फल, बीच में पेय द्रव्य व अन्त में खाने वाली वस्तुएं लेनी चाहिए।

निदेशक, ऋषिकुल परिसर,
उत्तराखण्ड आयुर्वेद विश्वविद्यालय, हरिद्वार

पानी गर्म करके पीने से वह नब्बे मिनट में पचता है। उसी पानी को गर्म करके ठण्डा करके पिया जाता है तो वह तीन घण्टे में पच जाता है जबकि ताजा पानी पचने में छः घण्टे लेता है और अधिक ठण्डा पानी पचने में और अधिक समय लेता है। इसके अतिरिक्त हिचकी लगी होने पर, खांसी, जुकाम, दमा, बुखार व गले के रोग आदि में गर्म पानी ही पीना चाहिए।

आयुर्वेद में दूध के साथ नमक का सेवन विरुद्ध होता है। न केवल परांठा अपितु नमकीन बिस्कुट व नमकीन भुजिया व अन्य नमकीन पदार्थ दूध के साथ नही खाने चाहिए। बहुत से नमकीन वस्तुओं के निर्माण में क्षार अर्थात मीठा सोडा का प्रयोग होता है। क्षार का सेवन न केवल बालों और आंखों के लिये अहितकर है अपितु आयुर्वेद अनुसार मनुष्य की पौरूष शक्ति का ह्रास इसका प्रयोग करता है उतना कोई और द्रव्य नही।

हमारे काम–काज के कारण परिस्थितियां ऐसी बन चुकी हैं कि सुबह का नाश्ता भागते भागते करते है जबकि रात को पूरा परिवार इकट्ठे में पौष्टिक भोजन करता है। बहुत से लोग सुबह के नाश्ते मे हल्का फुल्का ही ले पाते है। रात के भोजन में प्रायः सभी प्रकार के व्यंजनों का प्रयोग होता है। आयुर्वेद के अनुसार सुबह का खाना भारी होना चाहिए जबकि रात का खाना बहुत ही हलका होना चाहिए। रात का खाना अगर न भी खाया जाए तो और भी अच्छा है।

हमारी दिनचर्या इस प्रकार की भाग दौड़ की हो चुकी है कि बहुत कम लोग ऐसे होंगे कि वो रोज एक निश्चित समय पर भोजन करते होंगें। कभी समय से पहले व कभी समय के बाद भोजन करने से न तो पाचन क्रिया ठीक रहती है और इसके फलस्वरूप स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। जब तक सुबह का किया भोजन पच न जाए और कड़ी भूख न लगे तब तक पुनः भोजन नही करना चाहिए।

आलू का प्रयोग लगभग बहुत सी सब्जियों के निर्माण में किया जाता है। आयुर्वेद के अनुसार कन्द में से सबसे घटिया कन्द आलू है व सबसे श्रेष्ठ कन्द अदरख है। इसी तरह सरसों का साग जो कि पंजाब के लोगों की खास पसन्द है, को आयुर्वेद में सबसे निकृष्ट अर्थात घटिया कहा है।

बहुत से लोग रात को देरी के साथ सोते है और इसी कारण सुबह देरी के साथ उठते है। देरी से उठने का अर्थ है कि कई रोगों को निमंत्रण देना। रात को देरी से सोने से वात का प्रकोप हो जाता है व सुबह जल्दी न उठने से बहुत से रोग व्यक्ति को अपनी गिरफ्त में ले लेते है। ब्रह्म मुर्हूत में उठने से बहुत से रोग अपने आप शान्त हो जाते है। अथर्ववेद में भी लिखा है कि प्रातःकाल में सूर्य की रश्मियां व्याधियों को हर लेती है।

गर्म पानी के साथ स्नान सेहत के लिये अच्छा होता है। लेकिन सिर पर गर्म पानी से स्नान करने से बाल जल्दी सफेद होते है व आंखों की रोशनी खराब होती है। कुछ लोग बीमारी की अवस्था में भी रोज नहाते है जबकि मुंह के लकवे में ,दस्त लगे होने पर, बुखार में, आंख के रोगों में, कान के रोगों में, पुराने जुकाम में नही नहाना चाहिए। भोजन के बाद भी स्नान नही करना चाहिए।

इस तरह के अनेक व्यतिक्रम व्यवहार में देखने को मिलते हैं। बहुत बार अज्ञानतावश इनको सही समझ कर ऐसे आचरण को अपने जीवन में उतार लेते हैं जोकि स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ करते हैं। मात्र अपने आचरण को शास्त्रोक्त रखने से हम अस्वस्थ होने से बच सकते हैं।

नेत्र रक्षा के आसान उपाय

डॉ मंजिरी केसकर

सभी ज्ञानेंद्रियों में नेत्र सबसे महत्वपूर्ण ज्ञानेंद्रीय है । ऐसा कहते हैं जब तक जीवित रहने की इच्छा मनुष्य में है तब तक उसे सदा सर्वदा नेत्र रक्षण में यत्न करना चाहिए, क्योंकि धन होते हुए भी रात और दिन समान होने वाले अंधों के लिए जीवन व्यर्थ हो जाता है ।

अपने पास सब कुछ है पर देखने की शक्ति ही नहीं है तो हम इन सब चीजों का उपभोग नहीं कर सकते और एक तरह से सब से दूर हो जाते हैं, सोशली बायकॉट हो जाते हैं और जिंदा रहते हुए मृतवत जीवन जीने लगते हैं । इसीलिए नेत्र की रक्षा करना हर मनुष्य का कर्तव्य है । हमारे हिंदू संस्कृति में जब भी कोई बड़ा या ऋषि तुल्य व्यक्ति हमारे घर आता है तो हम उनकी पादपूजा करते हैं।

ऐसा कहते हैं कि अगर हमने अपने बड़ों के पादपूजा की, उनके पैर धोकर पोछे और उनके पैरों को मालिश किया तो बहुत पुण्य लगता है । कैसे ?

पैर के तलवे में दो मोटी सी सिरा होती है जो ऊपर सिर तक पहुंच जाती है और नेत्र में आकर बहुत सी शाखाओं में बट जाती है। इसीलिए अगर हम पैर की अच्छे से मालिश करें तो वह नेत्र रक्षा विधान ही है और जो बड़े बुजुर्ग लोग होते हैं या संत महात्मा होते हैं उनकी लंबी आयु के लिए हम हमेशा ही कामना करते हैं और लंबी आयु, वह भी अच्छी दृष्टि के साथ हो इसीलिए हम हमेशा उनकी पादपूजा करने का प्रयास करते हैं ।

हमारे हिंदू धर्म में जमाई को विष्णु का रूप माना है और इसीलिए शादी ब्याह में जमाई के पैर धोने की रीति रिवाज हमारे संस्कृति में है। यहां पर भी यह पैर धोना, पोछना या फिर उसको लेप लगाना या चंदन लगाना यह सभी चीजें नेत्र रक्षा विधान में ही आती है और जमाई के निरोगी दीर्घायु की कामना करते हुए उसका नेत्र रक्षा का विधान हो ऐसे ही इसीलिए हम उनकी पूजा करते हैं। आजकल हम यह सब बातें भूलते जा रहे हैं ।

आजकल कोई बहुत बड़ा इंसान आ जाता है हमारे घर तो हम उसको एसी में बिठा देते हैं और ठंडा जल या पेय पिला देते हैं जो कि हमारे आयुर्वेद के खिलाफ है ।

और एक बात आजकल हम भूलते जा रहे हैं वह है खाने में अच्छा घी का प्रयोग । हमारे खाने में हमेशा ही कम से कम 10 या 12 ग्राम अच्छा घी होना ही चाहिए क्योंकि पित्त के लक्षण में भी सस्नेह ऐसे ही बताया है। उसमें स्निग्धता जरूर होनी चाहिए और यही स्निग्धता पित्त को प्रज्वलित रखने में और पाचन का कार्य अच्छे से करने में सहाय्यभूत होती है। पर आजकल हम फैट फ्री डायट के नाम पर अच्छा घी खाते ही नहीं है। अच्छा घी, आपको मालूम है कि नेत्र के स्वास्थ्य के लिए बहुत हितकर होता है क्योंकि जब भी हम देखते हैं तो रेटिना में रोडॉप्सिन जो रहता है वह विटामिन ए के रूप में ही होता है। आपको मालूम है विटामिन ए का सबसे अच्छा सोर्स है अच्छा वाला घी और दूध, तो यह दोनों भी चीजें हमारे नित्य आहार में होनी ही चाहिए। आयुर्वेद के हिसाब से नेत्र एक मातृज अवयव है। इसका मतलब यह है कि जैसे हम अपनी मां की देखभाल अच्छे से कर लेते हैं, मां को कभी बुरा भला नहीं बोलते, एक बार हमारा पिताजी से झगड़ा हो सकता है पर हम यह तय करते हैं कि मां से कभी झगड़ा नहीं करेंगे वैसे ही हमको तय करना है कि कोई भी हो, कुछ भी हो पर हमें आंखों के अच्छे से ही देखभाल करनी है ।

इस लेख में आम लोगों को नेत्र रोग के हेतु और नेत्र की रक्षा कैसे की जाए और उसके लिए रोज के अपने आहार विहार में हमें क्या बदलाव करने चाहिए या क्या खाना चाहिए, क्या नहीं खाना चाहिए यह मैं आपको बताने वाली हूं। आयुर्वेद की व्याख्या जो की गई है उसमें भी लिखा है कि अपने आयु के लिए हितकर क्या है ,अहितकर क्या है, सुखकर क्या है, दुख कर क्या है यह सब हमें मालूम होना चाहिए और जो सुख कर है उसका हमें पालन करना चाहिए और जो दुख कर है उसका त्याग करना चाहिए। हितकर है उसको अपनाना चाहिए और अहितकर है तो उसको त्याग करना चाहिए। तो जब तक हमें यह पूरी तरह से पता नहीं होता कि नेत्र के लिए हितकर क्या है और अहितकर क्या है तो हम उसके अच्छे से देखभाल नहीं कर पाते हैं । इसलिए चिकित्सक सबको नेत्र के बारे में अच्छे से आपको बताए ताकि आपके नेत्र की ज्योति आपके आखरी सांस तक अच्छी रहे।

प्रोफेसर, पारुल इंस्टीट्यूट ऑफ आयुर्वेद,
पारुल युनिवर्सिटी, लिमडा, वडोदरा, गुजरात

नेत्ररोग के हेतु –

जो हेतु या फिर निदान बताए गए हैं वह सुश्रुत, चरक ने हजारों साल पहले बताए हैं परन्तु आज के परिपेक्ष्य में वह एकदम सही हैं ।

1. हमारी खानपान की आदतें थोड़ी सी बदल गई हैं पर उसमें भी जो उष्ण, तीक्ष्ण है या विदाही है या फिर अभिष्यंदी आहार है उसको हमें त्यागना चाहिए या कम लेना चाहिए तो ही हमारी नेत्र की रक्षा हो पाएगी।
2. सुश्रुताचार्य ने जो नेत्र रोग के हेतु बताए हैं उसमें बहुत ज्यादा देर तक उष्णता में रहे हुए व्यक्ति अचानक शीतल जल में प्रवेश करते हैं या फिर शीतल वातावरण में प्रवेश करते हैं तो यह नेत्र रोगों का आमंत्रण होता है ।
3. बहुत देर तक दूर देखते रहना यह भी नेत्र रोगों के लिए आमंत्रक ऐसा ही हेतु है । बहुत देर तक छोटी चीजें देखना यह भी नेत्र के लिए हानिकारक होता है ।
4. दिन के समय सोना और रात के समय जागना इसको स्वप्नविपर्यय हम बोलते हैं, यह नेत्र रोगों का बहुत बड़ा निदान है ।
5. बहुत ज्यादा रोना भी आंखों के लिए ठीक नहीं वैसे ही आंखों से आंसू को रोकना यह भी नेत्र रोगों का निदान माना गया है।
6. बहुत ज्यादा गुस्सा करना, बहुत ज्यादा क्लेश होने देना या बहुत ज्यादा शोक करना या बहुत धूल जहां पर है या फिर जहां पर धुवां है वहां जाना नेत्र रोगों का निदान माना गया है।
7. वैसे ही अगर उल्टी हो रही है तो उसको रोकना भी नेत्र के लिए हानिकारक होता है। बहुत ज्यादा उल्टी करना भी नेत्र के लिए हानिकारक होता, क्योंकि उल्टी करते वक्त नेत्र का अंतः प्रेशर बढ़ जाता है।

अब आप सोच रहे होंगे कि इतनी सारी चीजें है जो कि हम रोजमर्रा के हमारे जीवन में करते हैं उसमें जो अहितकर है उसको कम करें या फिर ऐसी कुछ चीजें हैं जो कि हम हमारे रोज के जीवन में कर सकते हैं, या खा सकते हैं ,जिसका आचरण हम कर सकते हैं ताकि नेत्र की रक्षा हो, उसको करें।

नेत्र के लिए खाने में हितकर –

जैसा कि शास्त्रों में कहा है कि नेत्र के लिए सबसे ज्यादा हितकारक है घी । दस बारह ग्राम घी हमारे रोज के खाने में हो तो पित्त का प्रकोप नहीं होगा और नेत्र रोग भी नहीं होंगे, क्योंकि नेत्र पित्त का स्थान माना गया है और अपने स्वस्थान में कोई भी दोष बहुत जल्दी बढ़ जाता है।

अगर हमारे खान–पान में पित्त प्रकोपक आहार विहार होगा तो बहुत जल्दी पित्त का प्रकोप हो जाएगा और वह सबसे पहले नेत्र को हानि पहुंचाएगा इसीलिए अगर हमें हमारी पाचन शक्ति ठीक रखनी है और नेत्र हित साधना है तो घी का प्रयोग खाने में अवश्य करना चाहिए। कम से कम 10 से 15 ग्राम घी सुबह के खाने में और वैसे ही शाम के खाने में होना ही चाहिए। इसके अलावा बैंगन, कर्कोटक यानी ककड़ी, कार्वेल्लक यानी करेला, पुनर्नवा काकमाची, कुमारी यानी कोरफाड़, द्राक्षा, मधु, चंदन, इंदुखंड यानी शर्करा, वनकुक्कुट या फिर कपिंजल का मांस यह सब चीजें नेत्र के लिए हितकर होती हैं । शालीतंडुल यानी पुराना शालीचावल, पुराण गोधूम यानी गेहूं, मूंग की दाल, सेंधव ,गोघृत, गोदुग्ध, मधु यह सब नेत्र के लिए हितकर है। अब हम सोच सकते हैं कि हमारे रोज के खाने में इनमें से क्या–क्या होता है।

अगर इनमें से कुछ नहीं है तो हमें हमारे खाने में उसका अंतर भाव करना चाहिए ताकि हमारे नेत्र की रक्षा हो। आम का अधिक सेवन नेत्र के लिए अहितकर होता है ।

नारियल, ताड़फल, खजूर, इमली यह सभी नेत्रों के लिए अहितकर बतलाए गए हैं। खरबूजा, तरबूज, खीरा भी नेत्र के लिए अच्छे नहीं होते हैं। अनार, फालसा, नारंगी यह चीजें भी नेत्र के लिए हितकर नहीं है। चिरौंजी, अखरोट, बादाम यह भी चक्षुष्य नहीं है पर निर्मली का बीज, द्राक्षा और नींबू का सेवन नेत्र के लिए हितकर है, इसका हम प्रयोग जरूर कर सकते हैं।

इसके अलावा त्रिफलाकाढा या त्रिफलाजल से आंखें हफ्ते में तीन बार अवश्य धो लेनी चाहिए। सोवीरांजन अगर मिल जाता है तो रोज आंखों में लगाना चाहिए। अगर वह नहीं मिलता तो कम से कम क्षौद्र यानी मधु अपनी आंखों में हफ्ते में दो बार जरूर डालना चाहिए । इसे आंखों से पानी निकल आएगा और वहां स्रोतों वैगुंण्य नहीं रहेगा। स्रोतस् खुल जाएंगे और नेत्र कभी रोगी नहीं होंगे ।

हफ्ते में एक बार आंखों में एक बूंद घी रात को सोते वक्त जरूर डालना चाहिए। इससे नेत्र की प्रसादन चिकित्सा हो जाती है ।

खाना खाने के बाद अपनी दोनों हथेलियां एक दूसरे पर रगड़ कर जितनी उष्णता उसमें निर्माण हो उस उष्णता से आंखों का स्वेदन करना चाहिए। यह आंखों के लिए बहुत हितकर होता है। तो जैसे ही हाथ गर्म हो जाए तो वह आंखों पर रखना चाहिए, इससे भी नेत्र के स्रोतस् खुल जाते हैं और वहां पर स्रोतों विमार्गगमन या फिर संग नहीं होता और नेत्र रक्षा हो जाती है।

इसके अलावा त्राटक हम कर सकते हैं । उगते सूरज को दो या पॉच मिनट तक एक साथ देखना नेत्र के लिए बहुत हितकर होता है या फिर जब आप पूजा करते हो तो जब दिया लगाते हो तो उसकी तरफ भी अगर 2 या 5 मिनट तक आप देखें तो उससे भी आपके नेत्र को बहुत फायदा होता है। नेत्र की शक्ति बढ़ जाती है और नेत्र की आयु भी बढ़ जाती है ।

अब हम आते हैं विहार पर। आजकल हम देख रहे हैं कि हम जैसे 90 प्रतिशत लोग मोबाइल पर या लैपटॉप पर या डेस्कटॉप पर काम कर रहे हैं। इतना ही नहीं कोविड–19 के बाद तो छोटे बच्चे भी लगातार मोबाइल पर ही सीख रहे हैं या लैपटॉप पर सीख रहे हैं क्योंकि उनके क्लासेस ऑनलाइन हो रहे हैं। अब यह तो हम कम नहीं कर सकते।

जो काम कर रहे हैं लैपटॉप पर या मोबाइल पर है जिनका काम ही लैपटॉप या मोबाइल से चलता है या फिर जिनको अमेरिका या यूके के टाइम के हिसाब से यहां काम करना पड़ता है, **इसका मतलब रात को जागना पड़ता है और दिन में सोना पड़ता है ऐसे वक्त में यह लोग काम तो नहीं छोड़ सकते तो इन लोगों के लिए हम क्या कर सकते हैं ?**
इन लोगों के लिए आयुर्वेद क्या बताता है वह निम्नानुसार है–

1. जो भी लोग कम्प्यूटर या लैपटॉप या मोबाइल पर काम करते हैं उनको सबसे पहला रूल या फिर सबसे पहला नियम यह करना चाहिए कि हर 20 मिनट के बाद 20 सेकंड के लिए अपनी आंखें बंद कर लेनी चाहिए ।
   वह ब्रेक लेना है हर 20 मिनट के बाद 20 सेकंड के लिए। उसको 20:20 का रूल बोलते हैं। ऐसा करने से आंखों की जो मसल्स है, आंखों के अंदर जो मसल होती है जो पेशियां होती है उन पर जो तनाव आता है वह कम हो जाता है और फिर से फ्रेश हो जाती है और इसके साथ ही मेक्यूला पर भी तनाव नहीं पड़ता और वह भी फिर से काम करने लगता है । यह जो ड्राई आई सिंड्रोम या फिर कम्प्यूटर विजन सिंड्रोम आजकल बहुत देखने को मिल रहा है उसको रोकने का सबसे आसान और सबसे असरदार तरीका यह 20:20 का रूल का पालन करना है ।
2. उसके बाद में बहुत ज्यादा भड़कीले रंग के कपड़े नहीं पहनने चाहिए।
3. इसके साथ ही अगर आप स्मोक करते हो अगर आप को सिगरेट या बीड़ी की आदत है तो उसका धुआं मुंह से लेकर मुंह से ही छोड़ना चाहिए । बहुत सारे लोग स्टाइल के नाम पर मुंह से लेकर धुआं नाक से छोड़ते हैं। ऐसा करना नेत्र के लिए बहुत हानिकारक होता है । ऐसे लोगों को कैटरेक्ट या ग्लूकोमा बहुत जल्दी होने की संभावना होती है । जब भी आपको नहाना हो तो सर से हफ्ते में दो बार ही नहाना है, भले आप स्त्री हो या पुरुष। सर से जब आप नहाते हो तो हल्का गुनगुना या ठंडा पानी का ही इस्तेमाल करना चाहिए । सर पर गर्म पानी से नहाना नेत्र के लिए अहितकर है।

अब हम उन लोगों के बारे में सोचेंगे जो परदेस के वक्त के हिसाब से काम करते हैं यानी दिन में सोते हैं और रात को जागते हैं –

रात भर कम्प्यूटर या लैपटॉप पर काम करते हैं ऐसे लोगों ने जब वह सुबह अपने घर जाते हैं तो स्नान कर लेना चाहिए। उसके बाद में हल्का नाश्ता लेकर उस नाश्ते के बाद आधे घंटे बाद 2 या 3 घंटे की नींद ले लेनी चाहिए। नींद से उठने के बाद खाना खा लेना चाहिए और खाना खाने के 3 घंटे के बाद नींद पूरी कर लेनी चाहिए । फिर उठेंगे तो काम पर जाने का ही वक्त हो जाएगा और फिर पूरी रात तो जागना ही है काम करते–करते।

कुछ लोग ऐसे होते हैं जो रात के 2:00 या 3:00 बजे घर वापस आ जाते हैं उनके लिए सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि वह रात को 2:00 या 3:00 बजे घर आते हैं तो उन्होंने कुछ भी खाना नहीं खाना है। हल्का गरम पानी पी के सो जाना है और सुबह 6:00 बजे किसी भी हालत में उठना ही है ।

प्रातः विधि हो जाने के बाद हल्का सा नाश्ता चाय/दूध जरूर लें । उसके बाद में थोड़ा सा व्यायाम करने के बाद 9 से 10 बजे तक खाना खा लेना चाहिए। खाना खाने के बाद 3 घंटा सोना नहीं है। 3 घंटे के बाद आप अपनी नींद पूरी कर लीजिएगा और फिर थोड़ा सा खाना खाकर ऑफिस चले जाइए ऐसा ही दिनक्रम इन लोगों का होना चाहिए तो ही इनको कोई भी नेत्र रोग भी नहीं होगा और डायबिटीज, हाइपरटेंशन जैसी बीमारियां भी इनके पीछे नहीं रहेगी। जो स्वप्न विपर्यय करते हैं यानी जब जागना है तब सोते हैं और जब सोना है तब जागते हैं उन लोगों ने अपने तबीयत का खास ख्याल रखना चाहिए, क्योंकि वह निसर्ग के नियम के खिलाफ जाकर काम कर रहे हैं तो सबसे पहले यहां उन्होंने यह ध्यान रखना है कि कैसे भी करके उनके शरीर में दोषों का प्रकोप ना हो और इसलिए खानपान का और सोने का अवश्य ख्याल रखना चाहिए।

खाने के तुरंत बाद कभी नहीं सोना। खाने के 3 घंटे बाद आप सो सकते हो। रात को अगर आते हो तो ऐसे वक्त में दही, चावल या दूध बिल्कुल भी नहीं खाना या पीना है क्योंकि यह सब चीजें विदाही, विष्टंभी और अभिष्यंदी यानी रोगों को निमंत्रण करने वाली होती है।

छोटे बच्चों के लिए आंखों का कैसे ख्याल रखना है वह नियम –

छोटे बच्चे आजकल कंप्यूटर मोबाइल पर बहुत ज्यादा लगे रहते हैं। उनको भी 20:20 का रूल फॉलो करना चाहिए हर 20 मिनट के बाद 20 सेकंड के लिए या तो दूर कहीं देखना है आंखें बंद कर लेनी है।

हमारी आंखों की संरचना ही ऐसी बनी है कि यह दूर के काम के लिए बनी है नजदीक का काम करते वक्त आंखों की जो पेशियां है उन पर तनाव आता है तो यह तनाव कम करने के लिए बीच–बीच में आंखों को विश्रांति देना बहुत ज्यादा जरूरी है । उसके बाद में बच्चों को कितनी भी जिद्द करे उनको फास्ट फूड ज्यादा खाने नहीं देना है महीने में एकाध बार चलेगा पर रोज के खाने में तो दाल, चावल, सब्जी, रोटी, पापड़, आचार, थोड़ा सा मीठा ऐसा षड्रसात्मक शाकाहार होना ही चाहिए । फल अवश्य लें, पर फल के साथ दूध या दही मिक्स करके ना लें क्योंकि आयुर्वेद के हिसाब से यह विरुद्ध आहार होगा और विरुद्ध आहार नेत्र रोगों के साथ बहुत सारी बीमारियों को आमंत्रित करता है ।

आयुर्वेद में एक और बहुत महत्वपूर्ण बात है कि अगर आपको मीठा खाना है तो खाने में सबसे पहले मीठा खाना चाहिए । क्योंकि जब पाचन शक्ति अपने चरम पर होती है तभी उसको गुरु आहार देना चाहिए । अगर हम ऑफिस में जाते हैं और ऑफिस टाइम खत्म होते होते अगर बॉस ने बड़ा काम दे दिया तो हम वह नहीं कर पाएंगे या करेंगे तो भी उसका अच्छा आउटपुट नहीं मिलेगा। उसके उल्टा अगर सुबह 9:00 बजे बॉस ने हमें काम दे दिया तो पूरा दिन हम अच्छे से उसको न्याय दे सकते हैं, वह काम अच्छे से कर सकते हैं ।

ऐसा ही पाचनशक्ती या पेट के लिए है । गुरु आहार हमेशा पहले लेना चाहिए। बीच–बीच में थोड़ा सा आचार या चटनी जरूर खा लेनी चाहिए ताकि अपने जिव्हांकुर फिर से प्रदीप्त हो उठें । बीच–बीच में थोड़ा थोड़ा पानी भी जरूर पी लेना चाहिए ताकि जब खाना पेट में जाए, जठर में जाए तो वहां मंथन क्रिया अच्छे से हो। इन सब चीजों का हमें ख्याल रखना चाहिए ।

बहुत ज्यादा तला हुआ या मसालेदार रोज के खाने में नहीं होना चाहिए। रोज का खाना सात्विक और गर्म होना चाहिए । जैसे मैंने पहले भी बोला कि खाने में 15 ग्राम घी अवश्य होना चाहिए। दाल चावल में एक चम्मच घी अवश्य डालकर खाइएगा और एक महत्वपूर्ण बात यह है कि खाना अगर गर्म हो तो बहुत बढ़िया। आपके पाचनशक्ती को उस पर ज्यादा काम नहीं करना होता है और फिर वह अच्छे से पच जाता है ।

दूसरे दिन आपको शौचानंद होगा। इस दुनिया में सबसे बड़ा आनंद शौचानंद ही है। जब सुबह पेट एक दम खाली, हल्का हो जाता है तो उसका आनंद अवर्णनीय होता है और अपना पूरा दिन बहुत अच्छे से निकल जाता है। इसलिए इन सब चीजों का ध्यान रखना बहुत ज्यादा जरूरी है ।

यह बहुत छोटी–छोटी चीजें हैं। इसके लिए हमें ज्यादा कुछ नहीं करना है । इसके लिए ज्यादा पैसे भी नहीं लगते । बस रोज का हमारा व्यवहार ऐसा होता कि हमारे पेट का रक्षण हो ताकि हमारे नेत्र की रक्षा हो ।

अगर पेट ठीक है तो सब ठीक रहता है। इसीलिए आद्य आहार रस खाने से बनता है वह खाना हमें सात्विक और वक्त पर खा लेना चाहिए, ताकि अपने पूरे शरीर का पोषण हो और अपने आंखों की भी रक्षा हो ।

आंखों की रक्षा के लिए हम जमाई को जूते देते हैं, छाता देते हैं और उनकी पादपूजा भी करते हैं । पर आजकल विकृति यह हो रही है कि हम वही जूते छुपा देते हैं । शादी में वरमाला डालने के वक्त में वर को ऊंचा उठा लिया जाता है या वधू को ऊंचा उठा लिया जाता है । हमारी संस्कृति ऐसी है कि खुद राम भी जब सीता उनके गले में वरमाला डालने जा रही थी तो थोड़े से झुके थे। पर आजकल सब बिगड़ गया है इसको ठीक करने की जिम्मेदारी भी हमारी है और हम जरूर करेंगे यह मेरा विश्वास है ।

धन्यवाद।

बारिश के मौसम में कैसे रखें अपनी सेहत का ख्याल

डॉ. राकेश कुमार शर्मा

गर्मी के मौसम के खत्म होने के बाद जब वर्षा ऋतु के दौरान बरसात की बून्दें गर्म तपी हुई ज़मीन पर पड़ती है तो मानव समाज के लिए एक बहुत ही खुशनुमा अहसास जगाती हैं। हालांकि बारिश सृष्टि को नवसंजीवनी प्रदान करती हैं। हर व्यक्ति बरसात के सुहाने मौसम का पूरा आनन्द लेना चाहता है। किन्तु यहां ध्यान रखने की बात है कि ये विभिन्न प्रकार के रोगों का भी जन्म देती हैं। इस मौसम में सर्दी–खांसी, अतिसार, उल्टी, मलेरिया, डेंगू, टाईफॉइड, त्वचा रोग, पीलिया इत्यादि बीमारियों के होने की संभावना रहती है। इन बीमारियों से बचने के लिए मनुष्य को बारिश के मौसम में होने वाली इन बीमारियों से बचने के लिए हमें निम्न सावधानियां विशेष रूपेण बरतनी चाहिएं।

1. खाने–पीने सम्बन्धी विशिष्ट सावधानियां :

- प्रत्येक मनुष्य को इस बात का खास ख्याल रखना चाहिए कि वह प्रयोग करने से पहले फल या सब्जी विशेषतः हरी सब्ज़ियों को भली भांति साफ पानी से धोना चाहिए।
- भोजन हमेशा ताजा और गरम–गरम बना हुआ उपयोग करना चाहिए।
- पर्युषित अथवा बासी खाना, उपयोग करने के लिए पहले से ही काट कर रखे हुए फल तथा बासी खाने का सेवन नहीं करना चाहिए।
- बारिश के मौसम में सब्जी / फल आदि जल्दी खराब होने की संभावना रहती है। इसलिए सदैव ताजा फल अथवा सब्जी का प्रयोग करना चाहिए।
- बारिश के दिनों में मनुष्यों में भोजन पचाने की क्षमता बहुत कमज़ोर हो जाती है। इस कारण इस मौसम में ज्यादा तला अथवा भुना हुआ आहार नहीं लेना चाहिए। यानि ऐसा आहार लेना चाहिए जो सुपाच्य हो अर्थात् आसानी से पच सके। इसका अभिप्राय है कि भूख लगने पर अग्निबल के आधार पर जितना पचाया जा सके उतना ही आराम से पचने लायक खाना लेना चाहिए।
- बहुत ज़्यादा ठंडा या खट्टा खाना नहीं खाना चाहिए।
- ज्यादा नमकयुक्त खाद्य पदार्थ यथा चिप्स, कुरकुरे, चटनी, पापड आदि कम खाने चाहिएं क्योंकि इस मौसम मे मनुष्य शरीर में Water Retention की संभावना ज्यादा होती है।
- इसके अतिरिक्त सड़क के किनारे ठेले आदि पर मिलने वाले अथवा होटल, ढाबे आदि का खाना खाने से जहां तक हो सके, बचना चाहिए। ऐसी जगहों का खाना खाने से फूड पॉइजनिंग के कारण दस्त, उल्टी, टॉयफॉयड इत्यादि बीमारियां हो सकती है। चायनीज़ फास्ट फूड, भेल, पानी–पूरी आदि आहार फूड पॉईजनिंग होने के मुख्य कारण हो सकते हैं।
- बारिश के दिनों के दौरान हवा में नमी की मात्रा अधिक होने से शरीर की गर्मी बाहर नहीं निकलती है। इसी कारण पसीना भी बहुत ही ज्यादा आता है। ऐसी स्थिति में यह बहुत ही आवश्यक है कि शरीर में द्रव के रूप में पानी की पर्याप्त मात्रा बनाये रखने के लिए भरपूर पानी का सेवन करे।
- इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि इस मौसम में हमेशा उबाल कर ठंडा किया हुआ या फिल्टर किये हुए स्वच्छ पानी का ही सेवन करना चाहिए। प्रतिदिन कम से कम 15 मिनट तक उबाल कर रखा हुआ पानी पीना चाहिए।
- शीतल पेय यथा कोल्ड ड्रिंक पीने की अपेक्षा तुलसी, इलायची की चाय या थोडा गरम पानी पीना ज्यादा फायादे मंद है।

2. बारिश से बचाव हेतु सावधानियां।

- बारिश का मौसम बहुत ही सुहावना होता है इसीलिए इस मौसम में कई लोगों को भीगना बहुत अच्छा लगता है। लेकिन इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि बारिश में ज्यादा देर तक भीगने से सर्दी–खांसी और बुखार हाने की संम्भावना

एसोसिएट प्रोफेसर एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर शरीर रचना विभाग,
स्नातकोत्तर आयुर्वेद अध्ययन संस्थान,
निदेशक, मानव संसाधन विकास केन्द्र, चीफ प्रॉक्टर, निदेशक, केन्द्रीय पुस्तकालय
सदस्य, प्रबन्ध मण्डल, डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् राजस्थान आयुर्वेद विश्वविद्यालय, जोधपुर

रहती है। बारिश में भीगने पर ज्यादा देर तक बालों को गीला नहीं रखना चाहिए।

- अगर किसी को दमा (asthama) आदि रोगों की शिकायत है तो ऐसी स्थिति में बार–बार सर्दी–जुखाम–खांसी होने की संभावना रहती है। इसलिए बारिश में भीगने से बचना चाहिए।
- बारिश से बचने के लिये छाता /रेनकोट का इस्तेमाल आवश्यक रूपेण करना चाहिये।
- कपडे या जूते/चप्पल गीले हो जाने पर तुरंत बदल दे। ज्यादा समय तक गीले कपडे पहनने से फंगल आदि त्वचा रोग हो सकते है।
- मधुमेह (डॉयबिटिज़) के मरीजों को खासकर अपने पैरों का ज्यादा ध्यान रखना चाहिये। अगर किसी व्यक्ति के पैर निरन्तर गीले रहते हैं तो ऐसा होने पर उन्हें शीघ्र ही साफ कर देना चाहिये।

3. बूढ़े व्यक्तियों की देखभाल

- बारिश के मौसम में बूढ़े व्यक्तियों के बीमार होने कि संभावना ज्यादा होती है। इसलिये ये आवश्यक है कि ऐसे व्यक्तियों के स्वास्थ्य का विशेष रूपेण ख्याल रखना चाहिए। बुजुर्ग लोगों को बारिश के समय यथासम्भव बाहर नहीं निकलने देना चाहिए।
- ज्यादा कच्चे फल या सलाद न खाए। इनके स्थान पर गरम चाय, कॉफी या सूप पीना चाहिए।
- सौन्फ, दालचीनी, काली मिर्च, सोंठ, मुलेठी आदि स्वास्थ्य रक्षक औषधियां का निरन्तर इस्तेमाल करना चाहिए। इनसे रोगप्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है।

इसके अतिरिक्त विशेषतः निम्न सावधानियां रखनी चाहिए :

- रात में सोते समय नियमित रूपेण मच्छरदानी का प्रयोग करें।
- अपने घर के आस–पास गंदगी न होने दें। घर के आस–पास जहां पर भी गड्ढे दिखें, उनको भर देना चाहिए। इससे बारिश का पानी रुककर सडता नहीं हैं। इसके अतिरिक्त भी मक्खी, मच्छर आदि उत्पन्न नही होंगे।
- बारिश के दिनों में प्रतिदिन घर की अच्छी तरह फिनाईल से सफाई आवश्यक रूपेण करनी चाहिए ताकि मक्खियाँ, मच्छर आदि न आएं।
- बच्चो को बारिश के मौसम से पूर्व ही तपेदिक (Typhoid) और Hepatitis के टीके लगवा देने चाहिए।।
- इतना सब करने के बाद भी यदि किसी भी प्रकार के रोग कि शंका होने पर तुरंत विशेषज्ञ चिकित्सक को दिखाना चाहिए ।

इस प्रकार हम ऊपर दी हुई कुछ विशेष सावधानियां रखकर वर्षा ऋतु में सुरक्षित रहकर इस सुहाने मौसम का पूरा लुफ्त उठा सकते हैं।

ज्वर मीमांसा

वैद्य भूपेश पटेल

आयुर्वेद शास्त्र में ''ज्वर'' के नाम से वर्णित और व्यवहार में ''बुखार'' के नाम से प्रचलित ऐसा एक अत्यन्त सामान्य प्रतित होने वाला परन्तु वास्तव में अत्यंत जटिल ऐसी व्याधि के विषय में आज देखेंगे। सामान्य रूप से ज्वर किसी दूसरी व्याधि के लक्षण रूप में एवं स्वतंत्र रूप में भी पाया जाने वाली व्याधि है। सुश्रुत संहिता में ज्वर को रोगों का राजा कहा गया है और उसे व्यक्ति के जन्म एवं मृत्यु के समय अवश्यरूप में शरीर पाया जाता है। हारीत संहिता में उसे सभी रोगों का मूल उत्पादक कारण भी कहा गया है। आयुर्वेद में ज्वर के त्रिदोषों के अनुसार, आहार–विहार अनुसार, उत्पति के मूल अनुसार अनेक प्रकार दिए गये है। प्रस्तुत लेख में उसके प्रकार आदि का वर्णन नहीं है परन्तु उसकी चिकित्सा संबन्धित भ्रामक मान्यता और कर्तुत्व–अकर्तुत्व के विषय में विस्तार से वर्णित है, जोकि अनिवार्य रूप से आवश्यक है।

ज्वर, सामान्य प्रतीत होने वाला परन्तु समझने हेतू अत्यंत गहन विचार–विमर्श एवं चिकित्सा के लिए भी विपुल – विमल बुद्धि और कर्मकौशल्य की अपेक्षा रखने वाली व्याधि है। उपरान्त सामान्य रूप से बहुतायत व्याधियां ''ज्वरपूर्वक'' अर्थात उनके उत्पत्ति के मूल में ज्वर का मुख्य कारणरूप होना ऐसी होती हैं। इसी हेतू ज्वर को जानने के लिए उसके प्रकार, उसकी गंभीरता, उपद्रव एवं उसकी चिकित्सा के विषय में यदि यथार्थ ज्ञान हो तो जनसामान्य को भी यह अत्यंत लाभकारी सिद्ध हो सकता है। प्रस्तुत लेख का उद्देश्य ज्वर की चिकित्सा का वर्णन करना नहीं है अपितु उसकी सामान्य जानकारी, ज्वर आने पर क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए, कौनसी कृतियों से बचना चाहिए, इन विषयों से अवगत कराना है।

प्रथमतः हम आयुर्वेद के सिद्धांतो के आधार पर ज्वर का साधारण कारण समझने का प्रयास करेंगे। ज्वर में संपूर्ण शरीर अथवा शरीर के किसी एक अंग का तापमान सामान्य से अधिक बढ़ता है अर्थात 98.6°F से बढ़कर 105°F पर्यंत देखने को मिलता है। आयुर्वेदिक शास्त्र अनुसार शरीर का तापमान निम्न कारणों से बढ़ता है :–

शरीर में अन्न का पाचन करने वाला मुख्य अग्नि और उसका मूलस्थान जठर अथवा आमाशय है। जहां वह अन्न को पकाने का काम करता है। इसके उपरांत पूरे शरीर में बारह अग्नि विद्यमान हैं, जिसको आयुर्वेद में धात्वाग्नि (सात) और भूताग्नि (पाँच) कहते हैं।

उसी क्रिया को आज चयापचय (Enzymatic process and Metabolism) के नाम से जाना जाता है। शरीर का वर्ण, दृष्टी (नेत्र का कार्य), क्षुधा–तृषा का नियंत्रण एवं शरीर का ताप नियंत्रण इत्यादि सभी कार्यो का मूल आधार जठराग्नि और उस पर आधारित धात्वाग्नि और भूताग्नि ही हैं। स्वस्थ अवस्था में सभी (तेरह) अग्नि अपना कार्य यथार्थ रूप से करती हैं तब शरीर के उपरोक्त अन्य सभी कर्म सुचारू रूप से चलते हैं और शरीर स्वस्थ रहता है। परन्तु कालस्वभाववश अथवा ऋतु परिवर्तन के कारण एवं व्यक्तिगत अनुकूल–प्रतिकूल आहार–विहार के कारण कभी–कभी सभी अग्नि का मन्द पडना स्वाभाविक है। मन्द जठराग्नि के कारण आमाशय में आहार का पूर्ण पाचन नही हो पाता (अंशतः ही होता है)। इसके परिणाम स्वरूप अर्धपक्व या अपाचित आहार रस बनता है, इसके साथ अन्य धात्वाग्नि आदि के मंदता के कारण भी विविध रसरक्तादि धातु गत पाचन क्रिया मंद होने से रस–रक्तादि धातुएँ भी अर्धपक्व या अपाचित बनती हैं। ऐसे अपाचित आहार रस एवं धातु को आयुर्वेद शास्त्र मे ''आम'' संज्ञा दी गयी है। ''आम'' का सामान्य अर्थ ''कच्चा'' / ''अपक्व'' / ''अर्धपक्व'' / ''आधा–अधुरा पका हुआ'' यह होता है। यहाँ इस आमदोष का स्वरूप जानना भी आवश्यक है। यह ''आम'' अत्यन्त चिपचिपा (पिच्छिल– आन्त्र एवं शरीर के अवयव मे चिपकने वाला) एवं दुर्गन्धित पदार्थ है, जिसे सर्व व्याधियों का मूल भी कहा गया है। ऐसे आमदोष युक्त आहाररस से शरीर की रस–रक्तादि धातु पोषित होने के कारण एवं अन्य धात्वाग्नि कि मंदता या दुष्टि के कारण भी रस–रक्तादि धातुएँ स्वतंत्र रूप से भी आमयुक्त बनती हैं। सामान्य विबन्ध अर्थात कब्जियत से लेकर हृदय कि धमनियों का अवरोध, गठियारोग इत्यादि बहुत से व्याधि आमदोष का ही परिणाम है। इन सभी व्याधिओं कि उत्पत्ति का मूल कारण ऐसा ''आम'' प्रत्येक व्यक्ति में पूर्वोक्त उल्लिखित ऋतुप्रभाव या आहार–विहार के विकृति के कारण स्वाभाविक रूप से अल्प–अधिक मात्रा मे देर–सुदेर में बनता रहता है। कुछ महीनों से लेकर कुछ वर्षों में आमदोष से युक्त रस– रक्तादि धातु जब एक निश्चित स्तर से अधिक बढ़ जाये तब वह अपने शरीर के प्राकृत कार्य करने में असमर्थ हो जाती है और शरीर का कार्यतन्त्र बिगड जाता है और जिस आशय, अवयव या अंग में चिपका हुआ है वहाँ की व्याधि उत्पन्न करता है। परिणामस्वरूप शरीर में रहे उस आम को दूर करना अनिवार्य हो जाता है और बिना पकाए या उसके चिपचिपापन दूर किए, उसे शरीर के आशय–अवयव–अंगो से निकालना असंभव है। इसी हेतू शरीर अपना तापमान बढा देता है और जब तक पककर वह शरीर के आशय अवयव–अंगो से बाहर निकालने योग्य नहीं बनता तब तक शरीर का तापमान बढ़ा हुआ रहता है जो कुछ घंटो से लेकर कुछ दिनों तक रहता

द्रव्यगुण विभाग, आईटीआरए, जामनगर

है। शरीर की इसी संरक्षणात्मक गतिविधि को हम ''ज्वर'' अथवा ''बुखार'' के नाम से जानते हैं।

व्यावहारिक उदाहरण देखे तो, सुजी का शिरा बनाते समय जब सुजी, घी और पानी आदि जब एक साथ पक रहा हो तब आधे पकी हुई स्थिति में वह बर्तन में चिपकता है। जब जलीय अंश पक जाता है और सिर्फ घी का अंश रह जाता है तब वह बर्तन मे चिपकता नही है एवं सरलता से बर्तन कडछि से छूट जाता है। कुछ ऐसी ही परिस्थिति शरीर के अङ्ग–अवयवों में आमदोष युक्त रस–रक्तादि धातुओं की होती है। रस रक्तादि धातुओं में रहा आम भी पकने पर ही अङ्ग–आशय–अवयव–सिराओं में से अलग हो सकता है। इस प्रकार शरीर स्वयं आमदोष को शरीर से दूर करने में प्रयत्नशील हो जाता है और इसी कारणवश जो जाठराग्नि है, जो कि सभी अग्निओं में मुख्य है, वह जठर/आमाशय छोडकर शरीर के आमदोष युक्त धातुओं (रस– रक्तादि) को पकाने संपूर्ण शरीर में अथवा जहां अधिक आवश्यकता हो वहां जाता है और शरीर के उस भाग/अवयव को तपाता है अथवा ज्वर का आरंभ होता है। इस प्रक्रिया में ज्वर का प्राबल्य (तीव्रता) और समय भी आमदोष की प्रबलता और मात्रा पर निर्धारित है। हाँ, व्यवहार में ऐसा भी देखा जाता है की शरीर के किसी निश्चित अंग में आमदोष का संचय अधिक मात्रा में हुआ हो तो उस अंग का तापमान शरीर के अन्य अंगों के तुलना में अधिक होता है। जब जाठराग्नि स्वयं का स्थान (जठर–आमाशय) छोडकर आमदोष के पाचन के लिए शरीर में प्रसारित हो और इस कारणवश ज्वर आये तब सर्व प्रथम चिकित्सा सूत्र ''लंघन'' करना अर्थात् ''कुछ भी नहीं खाना'' है, तब ही वह "guided missile" की तरह शरीर में आमदोष के पाचन के लिए पीछे गयीं हुयी अग्नि उसका कार्य व्यवस्थित रूप से कर पाएँगी। परन्तु यदि ज्वरित अवस्था में आहार लेना हुआ तो उसे पचाने हेतु जाठराग्नि को जठर में भी कार्य करने की आवश्यकता उत्पन्न हो जाती है और वह अग्नि पूर्ण रूप से शरीर में रहे आमदोष का पाचन नहीं कर पाती और अपर्याप्त वितरित (बंटा हुआ) जाठराग्नि अन्न का पाचन भी नहीं कर पाता। यदि योग्य लंघन – उपवास हो जाये तो आमदोष की मात्रा और प्राबल्य और अग्नि के बलाबल अनुसार 1 से 7 दिन में उसका पाचन हो जाता है और बाद में ज्वर अपने आप कम हो जाता है या सम्पूर्ण रूप से उतर जाता है।

जब ज्वर से यथायोग्य आमदोष का पाचन हो जाता है तब उसमें से ''सार'' अर्थात् सत्व धातुओं के लिए पोषक अंश और किट्ट या मल ऐसे दो भाग बनते हैं। धातुगत आम के पाचन से उत्पन्न सार भाग, धातु के पोषण में उपयोगी होता है और किट्टभाग (विविधमल) स्वेद (पसीना), मूत्र, पुरीष (मल) के रूप में यथायोग्य मार्ग से बाहर निष्कासित हो जाते हैं। क्यूंकि वह अब चिपचिपे नहीं रहते हैं और शरीर के सिरा स्रोतसों में से सरलता से निकलने योग्य हो जाते हैं। इसलिए शरीर इनको सरलता से बाहर निकाल सकता है।

ज्वर के चिकित्सासूत्र में प्रथम चरण – लंघन के बाद द्वितीय चरण में पाचन औषधी देने का विधान है। ज्वर द्वारा आमदोष के अधिकांश भाग का पाचन हो जाता है, परन्तु यदि किसी भी कारण थोडा सा अंश भी अपाचित रह जाता है तो उसका सुदर्शन चूर्ण आदि औषधिओं से पाचन करना चाहिए । औषध द्वारा योग्य आमपाचन होने के बाद तृतीय चरण में विरेचन अर्थात् दस्त/जुलाब लाकर पेट साफ कराना चाहिए, कारण पहले दो चरण में आमपाचन के फलस्वरुप जो किट्ट/मल बनता है वह संपूर्ण शरीर/धातुओ में से कोष्ठ/जठर/आंत्र में आता है। इस मल को आंत्र में से विरेचन/जुलाब दे के शरीर से बाहर निकालना भी आवश्यक है। इस तीसरे चरण के अंत में शरीर पूर्ववत् स्वस्थ और अग्नि बलवान हो जाता है। फिर से कालक्रमवश कुछ महीनों या वर्षों बाद यही प्रसंगक्रम पुनरावर्तित हो सकता है।

देखा जाये तो उपरोक्त ज्वर संप्राप्ति (कार्यप्रणाली) एवं चिकित्सा अत्यंत सरल दिखती है और यदि योग्य रीती से इसका अनुसरण हो तो इसका समाधान भी सरल है। परन्तु यदि इसमें अयोग्य चिकित्सा/उपक्रम किया जाये तो भयंकर व्याधियों से लेकर मृत्यु की भी संभावना होती है।

संक्षेप में देखें तो ज्वर के लिए **1. लंघन, 2. पाचन और 3. विरेचन** यह उपक्रम क्रमशः करना अनिवार्य है। शरीर में जब ज्वर हो तब तापमान उतारने की कोई भी दवा नहीं लेनी चाहिए अन्यथा इस कारण ''आमपाचन'' की यह महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया हो नहीं सकती। परन्तु वर्तमान एलोपैथी शास्त्रप्रभाव से एवं रुग्णधैर्य के अभाव के कारण आयुर्वेद की यह अद्भुत चिकित्सा की अवगणना और उपहास भी हो रहा है।

इस स्थिति में आयुर्वेद का चिकित्सासूत्र अंगीकार न करना और एलोपथी की मिथ्या चिकित्सा करने से कैसे परिणामों का उद्भव होता है अब वह देखते हैं। ज्वर में तुरंत ही शरीर का तापमान घटाने हेतू पेरासिटेमोल, एस्पिरिन, निमेसुलाईड आदि एंटीपायरेटिक दवाइयां वर्तमान समय में अधिक प्रचलित हैं। ऐसी दवाइयां लेने से त्वरित ज्वर का ताप घटने से पूर्वोक्त आमपाचन की प्रक्रिया हो नहीं सकती जिस कारण ''आमदोष'' अपने चिपचिपापन, दुर्गन्ध आदि गुणों के कारण शरीर के अंग, आशय, अवयव में चिपक के रह जाता है और शरीर के प्राकृत कार्य में बाधक बन जाता है। वह आमदोष शरीर के जिस आशय अङ्ग – अवयव में रहता है वहा सूजन आना, दर्द होना आदि सामान्य लक्षण से लेकर यदि वह लीवर, किडनी जैसे मुख्य अंगों में रह गया तो उनका क्षतिग्रस्त होना (Kidney & Liver failure) जैसे गंभीर लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। आरम्भ में सामान्य लक्षण दिखाई देते है, जब शरीर निर्बल हो गया हो और ज्वर उतारने की दवा से दबने की वजह से कुछ महीने बाद फिर से

यदि ज्वर आता है और इस समय भी पहले जैसे ही ज्वर का तापमान घटाने की दवा ली जाये तो इस नए ज्वर के परिणाम स्वरुप संचित नवीन आमदोष शरीर के किसी अन्य आशय – अङ्ग – अवयव में जाकर नवीन व्याधि निर्माण करता है। इस प्रकार ज्वर आने से आम को पचाने के लिए चेतावनी / सावधानी की घंटी शरीर थोड़े समय के लिए बजाता है, परन्तु बारम्बार उसकी अवहेलना कर एलोपैथी की एन्टीपायरेटिक (बुखार उतारने वाली) दवाइयाँ लेने से एक समय ऐसा आता है की दुर्बल बना शरीर स्वयं ठीक होने की प्रतिक्रिया स्वरूप ज्वर लाने की क्षमता खो देता है और ज्वर आना बंद हो जाता है। परन्तु प्रकृतिवश शरीर में आमदोष का बनना और उसका संचय होना बंद नहीं होता मात्र उसके विरुद्ध शरीर की ज्वररूप प्रतिक्रिया बंद हो जाती है, ऐसी स्थिति को बहुत सारे लोग गौरव की बात मानते है और कहते भी दिखाई देते है की ''मुझे तो सालो से ज्वर नहीं आया है!''। वास्तविकता में ज्वर – बुखार आना यहाँ हर एक व्यक्ति के लिए स्वाभाविक है। हाँ, किसी व्यक्ति को कुछ वर्षों बाद ज्वर आता है तो किसी को प्रति वर्ष ज्वर आता है, परन्तु आता तो है ही, और आना भी चाहिए। बहुत जल्दी– वारंवार या फिर लंबे समय बाद ज्वर आना यह व्यक्तिगत प्रकृति और उसके आहार–विहार, पाचन क्रिया आदि घटकों पर आधारित है। अनेक प्रसंग ऐसे भी दिखाई देते है कि किसी व्यक्ति को बहुत समय से ज्वर नहीं आया हो पर अन्य किसी व्याधी की चिकित्सा करते समय उसके शरीर की प्रतिक्रियात्मक शक्ति सक्रिय बन जाती है और ज्वर आना शुरू हो जाता है। ऐसे स्थिति में सावधानी पूर्वक यदि ज्वर की यथायोग्य चिकित्सा कर ली जाये तो वह निर्मूल हो जाता है (मूल से निरस्त होता है) और उसके साथ अन्य व्याधी भी ठीक हो जाती है। इसके फलस्वरूप शरीर पहले से अधिक स्वस्थ और बलवान बनता है।

उपरोक्त चर्चा के उपरान्त इतना तो स्पष्ट होता है की साम्प्रत समय में जितनी भी विविध व्याधियां दिखाई देती हैं (Auto-immune, idiopathic, inflammatory origin etc.) उनके मूल में महदांश में ज्वर की अयोग्य चिकित्सा ही कारणभूत है।

अभी तक हमने ज्वर के विषय में आयुर्वेद की संकल्पना एवं चिकित्सा का विचार किया। अब हम एलोपैथी की दृष्टीकोण से देखते हैं। एलोपैथी के प्रणेता हिप्पोक्रेटीस जो आज से अंदाजे 2400 वर्ष (400 BC) पहले के हैं, उनके ज्वर के विषय में विचार देखते हैं। हिप्पोक्रेटीस अनुसार अनेकविध व्याधियों के लिए कारणभूत विविध विषों को ज्वर =Pyrexia जला डालता है। इस कारण ज्वर को दबाना नहीं चाहिए। उस पुरातन समय में ज्वर को दबाने के लिए कोई भी दवाई नहीं थी। सन् 1890 में फेलिक्स होफमन नामक जर्मन वैज्ञानिक ने एस्पिरिन की खोज की जिसके प्रयोग से बुखार में बढ़ा हुआ शरीर का तापमान चमत्कारिक रीती से घटता दिखाई दिया, उस समय से लेकर आजतक बुखार को उतारने की वृत्ति अधिक से अधिक प्रबल बनती गयी। यह चमत्कारिक लगने वाला प्रयोग देख के अमेरीका के एक वैज्ञानिक – Dr. Matthew J. Kluger ने एक प्रश्न उठाया की यदि ज्वर अनावश्यक शरीर प्रक्रिया है तो उत्क्रांतिवाद अनुसार वह अभी भी अस्तित्व में क्यों है ? क्योंकि अनावश्यक अंग–अवयव और शरीरक्रिया अपने आप नाश होती है। उसके बाद उन्होंने प्रयोग के द्वारा सिद्ध किया की शरीर का तापमान बढ़ना अर्थात ज्वर का आना यह शरीर की संरक्षणात्मक प्रवृत्ति का एक अनिवार्य भाग है। ऐसा भी प्रत्यक्ष हुआ है की Virus, bacteria अथवा अन्य जैविक विष शरीर में प्रवेश करता है और अपने एक प्रमाण से अधिक मात्र में बढ़ता है / फैलता है तब शरीर की संरक्षा कार्यप्रणाली के कोष Prostaglandins नामक रसायन घटक अधिक मात्रा में उत्पन्न करते हैं जो शरीर का तापमान बढाता है। हर एक फारेनहाइट की वृद्धि शरीर में चयापचय क्रिया को अधिक मात्रा में अभिवृद्धित करती है, जैसे की हृदय – नाडी के स्पंदन, श्वास– उच्छ्वास क्रिया का वेग, Antibodies का निर्माण आदि उनके महत्तम मात्रा तक पहुचाता है, और इस प्रतिकूल परिस्थिति में Virus, bacteria, अन्य जैविक विष (metabolic waste) आदि जीवित नहीं रह पाते और जल झुलसकर नष्ट हो जाते हैं। दुर्भाग्यपूर्ण घटना यह है की जब ज्वर उतारने की दवा (Antipyretic) ली जाती है तब ज्वर की प्रक्रिया में बनता Cyclo & Oxygenase enzyme बनने से रुकता है जिस कारण शरीर में बनते Prostaglandins भी बनने बंद हो जाते हैं और परिणाम रूप शरीर तापमान घट जाता है। अंत में जीवाणु, विषाणु, अन्य जैविक विष यथावत् शरीर में जीवंत और सक्रिय बने रहते हैं और अन्य व्याधियां उत्पन्न करते हैं।

उपरोक्त दोनों चिकित्साप्रणाली के तथ्य जानने के पश्चात् ऐसा सिद्ध होता है की ज्वर में लंघन पूर्वक पाचन उपक्रम करें तो पुनः स्वास्थ लाभ शीघ्रता से हो सकता है। साथ में यह भी अनुभव से देखा गया है की प्रारंभ में थोड़े दिन ज्वर आने दें। यदि शरीर तापमान 102°F से अधिक जा रहा तभी ज्वर को अधिक बढ़ने से रोकें, उसके लिए सर पर अथवा नाभि ऊपर शीतल जल कि पट्टी रखें, परन्तु 102°F से नीचे उतारने का प्रयत्न ना करें। यदि इस प्रकार से ज्वर की चिकित्सा करें तो बहुत से भावी उपद्रवों से बचना शक्य है।

अंत में इतना ही समझना पर्याप्त है कि, जब कभी भी ज्वर आयें तब असमंजस और उतावली में उसे उतारने की दवाई ना लें और किसी अच्छे वैद्य के परामर्श से लंघन करें (भूखे रहे, पेट को आराम दें) । यह करने से ज्वर अपने आप और शीघ्र – सरलता से शांत हो जायेगा अथवा अत्यंत सामान्य औषधि चिकित्सा से उपशम हो जायेगा एवं अन्य गंभीर व्याधियों से बच पाएंगें।

सामान्य परामर्श –

ॐ सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः

1) लंघन के साथ आराम करें। किसी भी प्रकार का शारीरिक अथवा मानसिक श्रम ना करें।
2) अत्यधिक प्यास लगने पर आरोग्य – अम्बु (आधा उबला हुआ पानी) या अपने वैद्य की परामर्श अनुसार औषध सिद्ध जल लें।
3) ज्वर उतरने पर अथवा भूख लगने पर त्वरित पूर्ण भोजन का सेवन ना करें। पचने में हल्का हो, ऐसा आहार लें। उदाहरण– मूंग का पानी, उबले हुए मूंग, खील (लाजा) का उबला पानी, खील आदि ।
4) रुग्ण को दुर्बलता आयेगी ऐसा सोच के फलों के रस, नारियल का पानी, ठंडा पानी, चाय–बिस्किट, खिचडी आदि बिलकुल भी न दें।

सामान्य प्रश्न एवं उनके समाधान –

प्रश्न लंघन किसे कराना नहीं चाहिए अथवा अल्प प्रमाण में कराना चाहिए ?

उत्तर रुग्ण को यदि ज्वर की उत्पति अत्यधिक यानायान, यात्रा, शीत ऋतु, शीत आहार – विहार सेवन के कारण हुई हो तो लंघन अत्यंत सावधानीपूर्वक करना चाहिए। इस स्थिति में अच्छे आयुर्वेद वैद्य से परामर्श अवश्य लें।

प्रश्न लंघन कितना करना चाहिए ?

उत्तर ज्वर एवं आम का प्राबल्य, क्षुधा की प्रचिती, रुग्ण की प्रकृति एवं बलानुसार। लंघन करते समय यदि भ्रम चक्कर आना, आँखों के सामने अँधेरा आना आदि लक्षण उपस्थित हो जाये तो मूंग का पानी, उबले हुए मूंग, खील का उबला पानी, औषधी सिद्ध मांड आदि देते हुए रुग्ण की स्थिति का सावधानी पूर्वक निरीक्षण करें।

प्रश्न Cold sponging करना चाहिए या नहीं ?

उत्तर यदि शरीर तापमान 102°F से अधिक जा रहा हो तभी कर सकते हैं, परन्तु 102°F से नीचे उतारने का प्रयत्न ना करें। लेकिन Cold sponging आयुर्वेदोक्त लंघन उपक्रम का विकल्प नहीं बन सकता।

श्रीमद्भगवद् गीता एवं भययुक्त उद्वेग विकार चिकित्सा

डॉ.संगीता इन्दौरिया[1]
डॉ. देवेन्द्र सिंह चाहर[2]

श्रीमद्भगवद् गीता भगवान श्रीगोविन्द की साक्षात् अमृतवाणी है। इसका उपदेश धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में महाभारत के दो मुख्य कर्णधारों के मध्य का धर्म, आत्मा, सगुण–निर्गुण, व्यक्त अव्यक्तरूप चेतना, सत्–असत् आदि विषयों पर प्रश्नोत्तर के रूप में हुआ वार्तालाप है। भारत एवं विश्व में धर्म की स्थापना के लिए कुरुक्षेत्र में युद्धभूमि के सबसे महत्वपूर्ण केन्द्र अर्जुन के माध्यम से संपूर्ण विश्व समुदाय को दिया गया उपदेश है, जो कि गीता के उपदेश के रूप में पूजा जाता है। वास्तव में गीता में दिया गया उपदेश कर्ममार्ग, ज्ञानमार्ग व भक्तिमार्ग का मिश्रित स्वरूप है।

युद्धभूमि में गीता उपदेश की प्रासंगिकता :– धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में स्वजनों को देखकर अर्जुन जब युद्ध के लिए इंकार कर देता है तथा उसका आत्मविश्वास क्षीण होने लगता है, उसके मन में युद्ध में भविष्य में मृत्यु को प्राप्त होने वाले स्वजनों की कल्पना करके ही भय उत्पन्न हो जाता है, तब त्रिकालदर्शी योगीश्वर श्रीकृष्ण एक चतुर मनोचिकित्सक की भांति आत्मविश्वास से क्षीण, निराश व बेवजह डरे हुए अर्जुन को साइकोएनालिटिक थैरेपी, कोगनीटिव थैरेपी व विहवीयर थैरेपी के रूप में गीता का उपदेश देकर उसका उपचार करते हैं। अतः बिना कारण के उत्पन्न मानसिक अवसाद ही भययुक्त उद्वेग विकार है, जो यहां अर्जुन को हुआ था।

भययुक्त उद्वेग विकार (Phobic Anxiety disorders) :– यह एक प्रकार का न्यूरोटिक विकार है। जिसका प्रमुख लक्षण है किसी विशेष परिस्थिति या क्रिया से डरना, यह अतार्किक व बिना कारण के होता है । Specific phobic disorders involve persistent, unrealistic, intense anxiety about and fear of specific situations, circumstances or objects .The anxiety caused by a phobic disorder can interfere with daily living because people avoid certain activities and situation.

भययुक्त उद्वेग विकार के कारण – भययुक्त उद्वेग विकार के अनेक कारण है परन्तु दो मुख्य कारण है :–

1– दमन (Repression)
2– विस्थापन (Displacement)

अन्य कारण :–

1. जैविक कारण :– आनुवांशिकता एवं व्यक्तित्व संबंधी कारण है ।

2. मनोवैज्ञानिक कारण :– बाल्यावस्था के बुरे अनुभव यथा– छडी से पीड़ना, अंगुली मरोडना या अन्य प्रकार से गंभीर रूप से प्रताड़ित करने पर यह प्रताड़ना भविष्य में गंभीर भययुक्त उद्वेग विकार का कारण बनती है, इसमें बच्चे के मन में बाल्यावस्था से ही डर और हीन भावना गहराई तक उसके मस्तिष्क पर प्रभाव डालते है।

3. वातावरणीय कारण :– गंदी कच्ची बस्ती में रहना, बस स्टैण्ड व रेलवे स्टेशन आदि लगातार व अधिक शोरगुल वाले स्थान पर रहना, तनावपूर्ण वातावरण में कार्य करना, आर्थिक समस्या, बेरोजगारी, विपरीत सामाजिक वातावरण, पुरानी पीढी का दबाब और कई प्रकार के अन्य प्रतिबन्धों के कारण व्यक्ति के व्यक्तित्व पर दबाब पडता है जिससे उसके मन में विना कारण भय उत्पन्न होने लगता है।

महाभारत में पांडवों ने अपने जीवन में इन कारणों में से अनेकों कारणों को भोगा था यथा–जन्म से ही जीवन के प्रत्येक स्तर पर पीडा, कष्ट व दुत्कार मिला, माता कुन्ती के द्वारा सामाजिक व राजनैतिक कारणों से दबाब डाला गया व डराया गया, बचपन में ही हत्या का प्रंयास, धोखा व छल का शिकार हुए । मृत्यु का डर दिखाया गया, समाज से निष्कासन किया गया, भरी राजसभा में उनके राजा व धर्मपत्नी का अपमान किया गया । यहॉ तक की उनके रहने–खाने में बंदिश तथा कई बार वनबास के कारण अर्जुन बचपन से महाभारत युद्ध तक पूर्णरूपेण क्षोभ से ग्रसित हो गया। वेबजह डर गया, स्नेह को जीवन भर तरसते

1. असिस्टेंट प्रोफेसर, रस शास्त्र एवं भैषज्य कल्पना विभाग
2. विभागाध्यक्ष एवं एसोसिएट प्रोफेसर, मौलिक सिद्धांत एवं संहिता विभाग, पी.जी.आई.ए., जोधपुर

रहे इसलिये स्नेह को खोने से डर गया, स्वजनों को खोने से डर गया। पाण्डव वंशानुगत डरपोक नही थे परन्तु डर के मनोवैज्ञानिक कारक व वातावरण कारकों से उनके मन में गहराई तक अतार्किक डर ने अपना स्थान बना लिया। भगवान श्रीकृष्ण बाल्यावस्था से ही पाण्डवों के जीवन को भलीभॉति जानते थे अतः उनकों इन भय उत्पादक कारकों का ज्ञान था। इसलिए युद्ध से पूर्व वे स्वयं शान्तिदूत बनकर गये तथा सिर्फ 5 गॉव देने का प्रस्ताव रखा। युद्धभूमि में भी अर्जुन के डर को सही रूप में जानने के लिए उसके रथ को उस स्थान पर ले गये जहॉ से सम्पूर्ण युद्धभूमि, उसके अपने स्वजन, स्नेही सम्बन्धि सबसे नजदीक से दिखाई दें। यह एक प्रकार से उस भययुक्त उद्वेग विकार को सामने लाने के लिए किया गया कार्य था, हुआ भी वही। अर्जुन के भययुक्त उद्वेग विकार के कारणों के उत्पन्न होने पर सम्पूर्ण लक्षण प्रकट हो गये।

भययुक्त उद्वेग विकार के प्रकार – इसके निम्न तीन प्रकार है –

1– **भीडभाड से भय (Agora Phobia)-** भीडभाड वाले स्थान तथा जनस्थान को खोने का, अकेले होने का भय, अंधेरे स्थान, पुल, गुफा से भय। यह विकार विशेषकर महिलाओं में देखने को मिलता है।

2– **सामाजिक भय (Social Phobia)-** इसमें व्यक्ति स्वयं की आलोचना या निंदा से डरता है इसलिये वह जन समूह में या अपरिचित भीड में बोलने से डरता है, अजनबी से बात करने में, सामूहिक गतिविधियों में भाग लेने से डरता है।

3– **विशिष्ट भय (Specific Phobia)-** इसमें व्यक्ति किसी विशेष वस्तु, जानवर, परिस्थिति या कारण से डरता है, कीडों से डरता है, पानी की गहराई, उॅचे स्थान, अंधेरे स्थान से डरता है। इसकी पहचान दिन प्रतिदिन की क्रियाओं के सम्पादन करने पर की गई क्रिया के द्वारा की जाती है।

भययुक्त उद्वेग विकार के लक्षण (Phobic anxiety disorder) -

1. किसी स्थान, वस्तु या परिस्थिति आदि भयजन्य कारण से सामना करते हुए डरना ।
2. सांस लेने में कठिनाइ
3. श्वसन दर बढना
4. अत्यधिक पसीना आना
5. हृदय गति बढना
6. कपकपी
7. थकान, तनाव, कमजोरी महसूस करना

महाभारत में युद्धभूमि में अर्जुन ने भी भगवान् श्रीकृष्ण से अपने इन्हीं लक्षणों का होना बताया है–

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ।
वेपथुश्च शरीर मे रोमहर्षश्च जायते ।।
गाण्डीवं स्रसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते ।
न चशक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ।। गीता1/29.30
कार्पण्यदोषोपहतस्वभावःपृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः । गीता2/7
नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत । स्थितोऽस्मि.....गीता18/73

भययुक्त उद्वेग विकार चिकित्सा :– इसकी दो प्रकार की चिकित्सा है–

1. सत्–असत् ज्ञान संम्बन्धि चिकित्सा (Cognitive behaviour therapy)
2. मनोचिकित्सा (psychoanalytic therapy)

मानसरोग चिकित्सा सूत्र :– मानसरोग का चिकित्सा सूत्र आचार्य चरक ने कई स्थानों पर वर्णित किया है जो कि अवस्थानुरूप है :–

मानसं प्रति भैषज्यं त्रिवर्गस्यान्ववेक्षण ।
तद्विद्यसेवा विज्ञानमात्मादीनां च सर्वशः।। च.सू.11/47

इस सूत्र में आचार्य ने तीन विधियों से मानसरोगों की चिकित्सा को इंगित किया है ।

1. त्रिवर्गस्यान्ववेक्षण :– त्रिवर्ग को अनुरूप स्वरूप में पालन करना ।
2. तद्विद्यसेवा :– तद्विद्य पुरुषों (मानस रोगों की चिकित्सा जानने वालों अर्थात् मनोचिकित्सक) से परामर्श लेना।
3. विज्ञानमात्मादीनां च सर्वशः– आत्मादि(आत्मा,देश,कुल,काल,बल,शक्ति) का ज्ञान रखना ।

मानसो ज्ञानविज्ञानधैर्यसमृतिसमाधिभिः । च.सू. 1/58
त्यागः प्रज्ञापराधानामिन्द्रियोपशमः स्मृतिः ।
देशकालात्मविज्ञानं सद्वृत्तस्यानुवर्तनम् ।। च,सू. 7/53

सद्वृत्तस्यानुवर्तनम् – ब्रह्मचर्यज्ञानदानमैत्रीकारुण्यहर्षोपेक्षाप्रशमपरश्च स्यादिति ।। च.सू.8/29 ये सभी सूत्र मानस रोगों की चिकित्सा के आधार है।

श्रीमद्भगवद् गीता में भयजन्य उद्वेग विकार चिकित्सा – श्रीमद्भगवद् गीता में श्रीकृष्ण के द्वारा अर्जुन के लिए की गई चिकित्सा, जो कि भयजन्य उद्वेग विकार की चिकित्सा है, को मुख्यतः तीन प्रकार से जान सकते है

1–साइकोएनालिटिक थैरेपी – इसमें रोगी को उसके मन के भीतर गहरी दबी भावना व्यक्त करने को प्रेरित किया जाता है । इसमें रोगी की बात ध्यान से सुनी जाती है उसको बीच में टोकते नही है, रोकते नही है । सम्पूर्ण गीता में भी भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को बोलने का पूर्ण अवसर दिया है और ध्यान पूर्वक अर्जुन को सुना भी है ।

2–कोगनीटिव थैरेपी– इस थैरेपी में विचारों के तत्वों को सत् –असत् के आधार पर अलग अलग करके देखने को कहा जाता है । भगवान श्रीकृष्ण भी अर्जुन को यही करने की कहते है ।

'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः' । 2/16

और भगवान श्रीकृष्ण कहते है –

'अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः।'
जातस्य हि ध्रुवो मृत्युध्रुवं जन्म मृतस्य च । 2/27

3–बिहेवियर थैरेपी – रिलैक्सेशन टैक्निक– और भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को सत्– असत् ,जन्म–मृत्यु व आत्मा की अमरता, निष्काम कर्म, इन्द्रियजय का ज्ञान देकर भय रहित करते है –

.....शीतोष्णसुखदुःखदाः । आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ।। 2/14
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।.....2/23

और भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से स्थिरप्रज्ञ होने को भी कहते है–

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ।। 2/55
और दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ।। 2/56

और भगवान श्रीकृष्ण ने निष्काम कर्म करने को कहा है जिससे जन्म मरण के बन्धन से मुक्ति मिल सके–

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्य .....
कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ।।
योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्तवा धनञ्जय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ।। गीता 2/47–48

और भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को चिन्ता मुक्त करते है–

मयि सर्वाणि कर्माणि सन्न्यस्याध्यात्मचेतसा 3/30

और फिर भगवान इन्द्रियजय का मार्ग बताते है –

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ।।
इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ।।
एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ।।

भगवान कहते है कि निष्काम कर्म के बिना सन्यास नही है अतः निष्काम कर्म का संदेश देते है –
फिर कर्म को समझाते है गीता 4/17–19 एवं ध्यान एवं योगाभ्यास विधि बताते है –4/10 –23 ज्ञान अज्ञान, त्याग, प्रकृति–पुरुष, त्रिगुण, तदनुसार भोजन, त्रिविध पुरुष ब्रह्म, अध्यात्म, कर्म, कर्ता, बुद्धि, धारणा एवं लक्ष्य प्राप्ति का उद्देश्य व श्रेष्ठता, इन सभी का सम्पूर्ण गीता में वर्णन करते है ।

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः । यह कहकर अर्जुन को निश्चिन्त करते हैं ।

बच्चों में नॉन अल्कोहलिक फैटी लीवर रोग

डॉ. महापात्र अरुण कुमार [1], डॉ. लक्ष्मी [2], डॉ. प्रशान्त गुप्ता [3], डॉ. राजगोपाल [4]

एन.ए.एफ.एल.डी. (NAFLD) व्याधि क्या है ?

नॉन अल्कोहलिक फैटी लीवर रोग या एन. ए. एफ. एल. डी. (Non - alcoholic fatty liver disease - NAFLD) एक ऐसी स्थिति है जिसमें बच्चों के यकृत (लीवर) में अतिरिक्त वसा (Fat) जमा हो जाती है। सामान्यतः, वयस्कों में भारी मात्रा में शराब के निरन्तर सेवन के कारण, लीवर में वसा जमा होने लगती है, तो इस स्थिति को अल्कोहल संबंधित लीवर रोग (Alcohol associated Liver Disease) कहा जाता है। परंतु एन. ए. एफ. एल. डी. व्याधि में बिना शराब के सेवन के बावजूद लीवर में अतिरिक्त वसा जमा हो जाती है ।

इस व्याधि के दो प्रकार हैं

- नॉन अल्कोहलिक फैटी लीवर (एनएएफएल– NAFL)
- नॉन अल्कोहलिक स्टीटोहेपेटाइटिस (एनएएसएच – NASH)

एन.ए.एफ.एल. (NAFL) एक अगम्भीर (अधिक नुकसानदेह नहीं) स्थिति है, और एनएएसएच अधिक गंभीर स्थिति है। एन.ए.एफ.एल., नॉनअल्कोहलिक फैटी लीवर रोग का ही एक रूप है जिसमें बच्चे के लीवर में वसा बढ़ जाती है लेकिन लीवर में बहुत कम या नहीं के बराबर सूजन या अन्य कोई और क्षति नहीं होती है। एनएएफएल आम तौर पर यकृत क्षति या अन्य किसी जटिल समस्या को उत्पन्न करने का कारण नहीं होता है। एन .ए.एस.एच (NASH) भी नॉन अल्कोहलिक फैटी लीवर रोग का ही एक रूप है जिसमें बच्चे के लीवर में वसा के अलावा लीवर में सूजन और लीवर खराब होने की स्तिथि आ जाती है। इसी सूजन और लीवर की क्षति के कारण लीवर फाइब्रोसिस या घाव हो सकता है। और इस के कारण सिरोसिस हो सकता है जिससे लीवर स्थायी रूप से क्षतिग्रस्त हो जाता है। सिरोसिस के कारण लीवर कैंसर भी हो सकता है ।

बच्चों में NAFLD कितना सामान्य है ?

भारत में किये गये एक स्कूल–आधारित क्रॉस–सेक्शनल अनुसंधान में मोटे बच्चों में एनएएफएलडी की व्यापकता 66.1% पाई गई है। 'संयुक्त राज्य अमेरिका के बच्चों में नॉन अल्कोहलिक फैटी लीवर रोग दीर्घकालिक यकृत रोग का सबसे सामान्य कारण है। अध्ययनों से ये पता चलता है कि लगभग 5% से 10% बच्चों में NAFLD पाया जाता है। विकासशील देशों के महानगरों में ये रोग अब बहुतायत में मिलने लगा है । हाल ही के दशकों में बच्चों में NAFLD होना सामान्य हो गया है, आंशिक रूप से इसका कारण बचपन में मोटापा है जो की अब अधिक, आम हो गया है। शोध से पता चलता है कि NAFLD से ग्रसित 20% से 50% बच्चे आगे चलकर NASH में परिवर्तित हो जाते है ।

नॉनअल्कोहलिक फैटी लीवर रोग होने की अधिक संभावना किसे है ?

जिन बच्चों को मोटापा या मोटापे से संबंधित कुछ स्वास्थ्य समस्याएं हैं, उनमें नॉन अल्कोहलिक फैटी लीवर रोग विकसित होने की अधिक संभावना है। यह व्याधि छोटे बच्चों की तुलना में बड़े बच्चों में और लड़कियों की तुलना में लड़कों में अधिक सामान्य है।

NAFLD के संभावित उपद्रव क्या होते हैं ?

नॉनअल्कोहलिक फैटी लीवर रोग से पीड़ित बच्चों में लीवर संबंधी उपद्रव एवं अन्य स्वास्थ्य समस्याएं विकसित होने की संभावना अधिक होती है।,

- **यकृत संबंधित उपद्रव** – नॉनअल्कोहलिक फैटी लीवर रोग वाले अधिकांश बच्चों में NAFL हो जाता है। NAFL वाले बच्चों में आमतौर पर यकृत संबंधी उपद्रव विकसित नहीं होती हैं हालांकि उनमें मधुमेह जैसी अन्य स्वास्थ्य समस्याओं का खतरा अधिक बढ़ जाता है। NAFLD होने वाले बच्चों में कुछ को NASH हो जाता है, जिस से लीवर संबंधी जटिल

1. असिस्टेण्ट प्रोफेसर, कौमारभृत्य विभाग, अखिल भारतीय आयुर्वेद संस्थान, नई दिल्ली
2. एसोसिएट प्रोफेसर, शरीर क्रिया विभाग, महावीर आयुर्वेद मेडिकल कॉलेज, मेरठ (यूपी)
3. एसोसिएट प्रोफेसर, कौमारभृत्य विभाग, अखिल भारतीय आयुर्वेद संस्थान, नई दिल्ली
4. विभागाध्यक्ष, कौमारभृत्य विभाग, अखिल भारतीय आयुर्वेद संस्थान, नई दिल्ली

समस्याएं लीवर सिरोसिस और लीवर कैंसर हो सकता है। यदि सिरोसिस के कारण लीवर खराब हो जाता है तो लीवर प्रत्यारोपण की भी आवश्यकता हो सकती है। वयस्कता के दौरान NAFLD विकसित करने वाले लोगों की तुलना में, जिन लोगों में बचपन के दौरान NAFLD विकसित होता है उनमें वयस्कों के रूप में NASH और अन्य संबंधित जटिलताओं या यकृत रोग होने की संभावना बढ़ जाती है। NASH वाले बच्चों में बचपन के दौरान सिरोसिस विकसित हो सकता है। हालांकि, सिरोसिस की जटिलताएं, जैसे कि यकृत विफलता और यकृत कैंसर, आमतौर पर वयस्क होने पर उत्पन्न होती हैं।

- **अन्य स्वास्थ्य समस्याएं** – एनएएफएलडी वाले बच्चों में अन्य स्वास्थ्य समस्याओं का खतरा भी अधिक होता है, जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं–
  - मधुमेह टाईप 2
  - मेटाबोलिक सिंड्रोम
  - ऐसी स्थितियाँ जो मेटाबोलिक सिंड्रोम का ही एक हिस्सा हो सकती हैं, जैसे उच्च रक्तचाप और रक्त में वसा–कोलेस्ट्रॉल और ट्राइग्लिसराइड्स का असामान्य स्तर, मेटाबॉलिक सिंड्रोम वाले बच्चों में वयस्क होने पर हृदय रोग, स्ट्रोक और धमनियों का लचीलापन कम होने का खतरा बढ़ जाता है।

बच्चों में NAFLD के क्या लक्षण हैं ?

आमतौर पर, नॉनअल्कोहलिक फैटी लीवर रोग (NAFLD) – जिसमें नॉन अल्कोहलिक फैटी लीवर (NAFL) और नॉनअल्कोहलिक स्टीटोहेपेटाइटिस (NASH) शामिल हैं – एक ऐसा दबे पाँव आने वाला रोग है जिसमें बच्चे में बहुत कम या कोई लक्षण दिखाई नहीं देते हैं। NASH के कारण सिरोसिस विकसित होने पर भी बच्चों में लक्षण कई बार प्रकट नहीं होते हैं। हालाँकि, जब लक्षण पहली बार प्रकट होते है तब तक बच्चे का लीवर पहले से ही स्थायी रूप से क्षतिग्रस्त होने की संभावना बढ़ जाती है। यदि बच्चों में NASH के लक्षण हैं, तो वे या तो हमेशा थका हुआ महसूस कर सकते हैं या आसानी से थक जाते हैं और पेट के ऊपरी हिस्से में दाहिनी ओर यकृत के स्थान पर कुछ असुविधा महसूस होती है।

बच्चों में NAFLD का क्या कारण है ?

विशेषज्ञ अभी भी NAFLD के कारणों का अध्ययन कर रहे हैं। शोध से पता चलता है कि कुछ स्वास्थ्य समस्याओं, जीन (genes) और अन्य कारकों के कारण कुछ बच्चों में NAFLD विकसित होने की संभावना बढ़ जाती है।

स्वास्थ्य समस्याएं – निम्नलिखित स्वास्थ्य समस्याओं वाले बच्चों में एनएएफएलडी विकसित होने की अधिक संभावना है

- अधिक वजन या मोटापा।
- टाइप 2 मधुमेह ।
- उच्च रक्तचाप।
- रक्त में वसा का असामान्य स्तर।
- ट्राइग्लिसराइड्स का उच्च स्तर।
- कोलेस्ट्रॉल का असामान्य स्तर – आमतौर पर अधिक कोलेस्ट्रॉल (कुल), अधिक एलडीएल कोलेस्ट्रॉल, या कम एचडीएल कोलेस्ट्रॉल।
- मेटाबोलिक सिंड्रोम, या मेटाबोलिक सिंड्रोम के एक या अधिक लक्षण। मेटाबोलिक सिंड्रोम अधिक वजन और मोटापे से जुड़े लक्षणों और चिकित्सीय स्थितियों का एक समूह है। चिकित्सक आमतौर पर बच्चों में मेटाबॉलिक सिंड्रोम को निम्नलिखित लक्षणों के संयोजन के रूप में परिभाषित करते हैं
  - आकार में कमर का माप अधिक होना
  - रक्त में ट्राइग्लिसराइड्स का उच्च स्तर ।
  - रक्त में एचडीएल कोलेस्ट्रॉल का निम्न स्तर ।
  - उच्च रक्तचाप।
  - सामान्य से अधिक रक्त शर्करा का स्तर या टाइप 2 मधुमेह

विशेषज्ञ निश्चित रूप से नहीं जानते कि NAFLD वाले कुछ बच्चों में NAFL और अन्य में NASH क्यों होता है। शोध से पता चलता है कि NASH उन बच्चों में अधिक सामान्य है जिन्हें NAFLD और टाइप 2 मधुमेह दोनों हैं।

- **जीन** (Genes) – कुछ जीन बच्चे में NAFLD विकसित होने की संभावना बढ़ा सकते हैं। जीन यह भी बता सकते हैं कि NAFLD कभी–कभी पीढ़ी दर पीढ़ी परिवारों में क्यों चलता रहता है। विशेषज्ञ अभी भी अन्य जीनों का अध्ययन कर रहे हैं

जो NAFLD के होने या इसके उपद्रवों के उत्पन्न होने में भूमिका निभा सकते हैं।

- **अन्य कारक**
  - जन्म के समय शिशु का भार – शोध से पता चलता है कि जिन बच्चों का जन्म के समय वजन अधिक या कम होता है उनमें NAFLD विकसित होने की संभावना अधिक होती है।
  - माइक्रोबायोम में परिवर्तन – पाचन तंत्र में उपस्थित बैक्टीरिया (माइक्रोबायोम) पाचन क्रिया में मदद करते हैं। अनुसंधान अध्ययनों से यह पता चला है एनएएफएलडी से पीड़ित बच्चों के माइक्रोबायोम की संरचना सामान्य बच्चों के माइक्रोबायोम से काफी अलग होती है ।
  - फ्रुक्टोज से भरपूर आहार – अनुसंधानों से पता चला है कि फ्रुक्टोज से भरपूर आहार का सेवन एनएएफएलडी का खतरा बढा सकता है।

क्या एनएएफएलडी बच्चों में फैटी लीवर का एकमात्र कारण है ?

बच्चों में NAFLD के अलावा फैटी लीवर के अन्य कारण भी हो सकते हैं। बच्चों में NAFLD के अलावा फैटी लीवर के अन्य कारण निम्नलिखित हैं :–

- लिपोडिस्ट्रॉफी विकार – इस व्याधि में बच्चे के शरीर में वसा का अनुचित तरीके से भंडारण या संग्रहण होता है।
- सीलिएक रोग (Celiac Disease)
- तेजी से वजन घटना या कुपोषण
- कुछ एलोपैथिक दवाएं, जिनमें मानसिक विकार, तंत्रिका तंत्र विकार, या त्वचा की स्थिति का इलाज करने के लिए उपयोग की जाने वाली दवाएं शामिल हैं फैटी लीवर का कारण हो सकती हैं ।
- आनुवांशिक बीमारियाँ, जैसे विल्सन रोग (Wilson Disease) और हाइपोबेटालिपोप्रोटीनीमिया
- अत्यधिक मद्यपान

एनएएफएलडी का निदान कैसे किया जाता है ?

इस व्याधि का निदान करने के लिए चिकित्सक, चिकित्सा और पारिवारिक इतिवृत, शारीरिक परीक्षण और अनेक परीक्षणों का उपयोग करते हैं।

चिकित्सा और पारिवारिक इतिवृत – चिकित्सक बच्चे की स्वास्थ्य समस्याओं के इतिहास के बारे में पूछते हैं जिससे एनएएफएलडी विकसित होने की संभावना बढ़ जाती है, जैसे

- अधिक वजन या मोटापा
- इंसुलिन प्रतिरोध या टाइप 2 मधुमेह
- उच्च रक्तचाप
- रक्त में ट्राइग्लिसराइड्स का उच्च स्तर या कोलेस्ट्रॉल का असामान्य स्तर

जिन बच्चों के परिवार में इन स्वास्थ्य समस्याओं का इतिहास रहा है उनमें एनएएफएलडी विकसित होने की संभावना अधिक होती है। चिकित्सक, आहार और जीवनशैली के उन कारकों के बारे में भी पता लगाते हैं जिनसे बच्चे में एनएएफएलडी और एनएएसएच विकसित होने की अधिक संभावना हो सकती है जैसे शारीरिक गतिविधि की कमी, चीनी और स्टार्च से भरपूर आहार खाना, या शर्करा युक्त पेय पदार्थ का अधिक सेवन ।

शारीरिक परीक्षा – शारीरिक परीक्षण के दौरान, चिकित्सक आमतौर पर बच्चे के बॉडी मास इंडेक्स (Body Mass Index) की गणना करने के लिए वजन और ऊंचाई की जांच करते हैं। एनएएफएलडी या एनएएसएच व्याधि के शारीरिक चिन्हों का परीक्षण करते हैं :–

- यकृत का बढ़ना
- इंसुलिन प्रतिरोध के लक्षण, जैसे कि बच्चे की गर्दन या बगल पर काले त्वचा के धब्बे
- सिरोसिस के लक्षण, जैसे प्लीहा का बढ़ना

इस व्याधि के निदान के लिए कौन से परीक्षण किये जाते हैं ?

बच्चों में एनएएफएलडी का निदान करने, एनएएफएल और एनएएसएच के बीच अंतर बताने और अन्य यकृत समस्याओं की जांच करने के लिए रक्त परीक्षण, इमेजिंग परीक्षण और कभी–कभी यकृत बायोप्सी का उपयोग करते हैं।

- **रक्त परीक्षण** – यदि रक्त परीक्षण में लीवर एंजाइम एलानिन एमिनोट्रांस्फरेज (एएलटी) और एस्पार्टेट एमिनोट्रांस्फरेज (एएसटी) के बढ़े हुए स्तर दिखाई देते हैं, तो चिकित्सक को एनएएफएलडी का संदेह हो सकता है।
- **इमेजिंग परीक्षण** – यदि रक्त परीक्षण से पता चलता है कि बच्चे में लिवर एंजाइम का स्तर बढ़ा हुआ है, तो चिकित्सक

लिवर के इमेजिंग परीक्षण करते हैं। जबकि इमेजिंग परीक्षण एनएएफएलडी के निदान की पुष्टि नहीं कर सकते हैं या एनएएफएल और एनएएसएच के बीच अंतर नहीं बता सकते हैं, किन्तु इमेजिंग परीक्षण अन्य यकृत समस्याओं के संकेत दे सकते हैं कि यकृत में वसा मौजूद है। आमतौर पर इस्तेमाल किया जाने वाला इमेजिंग परीक्षण अल्ट्रासाउंड है। अल्ट्रासाउंड परीक्षण में विकिरण का उपयोग नहीं होता है और ये दर्दनाक नहीं होते हैं।

- **इलास्टोग्राफी** (Elastography) – यह एक नए प्रकार का परीक्षण है जो यह निर्धारित करने में मदद कर सकता है कि क्या बच्चे को उन्नत लिवर फाइब्रोसिस, या स्कारिंग है । कुछ मामलों में, चिकित्सक बच्चे के लीवर की कठोरता को मापने के लिए इलास्टोग्राफी परीक्षण करते हैं। लिवर की कठोरता का बढ़ना फाइब्रोसिस का संकेत हो सकता है।
- **लीवर बायोप्सी** (Liver Biopsy) – लिवर बायोप्सी ही एकमात्र परीक्षण है जो एनएएफएलडी का निदान की पुष्टि कर सकता है, बता सकता है कि बच्चे में एनएएफएल है या एनएएसएच, और स्पष्ट रूप से दिखाता है कि बीमारी कितनी गंभीर है, जिसमें कितना फाइब्रोसिसया स्कारिंग मौजूद है। लिवर बायोप्सी के दौरान, चिकित्सक यकृत से ऊतक का एक छोटा सा टुकड़ा लेते हैं और माइक्रोस्कोप के नीचे ऊतक की जांच करते हैं।

एनएएफएलडी की चिकित्सा –

सबसे महत्वपूर्ण है अतिरिक्त वजन बढ़ने से बचना। मोटापे से ग्रस्त बच्चों का वजन धीरे–धीरे कम हो जाए ताकि नॉन अल्कोहलिक फैटी लीवर रोग (एनएएफएलडी) – चाहे नॉन अल्कोहलिक फैटी लीवर (एनएएफएल) या नॉनअल्कोहलिक स्टीटोहेपेटाइटिस (एनएएसएच) का इलाज किया जा सके। वजन कम करना लीवर में वसा सूजन और फाइब्रोसिसया घाव को कम करने का सबसे प्रभावी तरीका है।

वजन को नियंत्रित करने और एनएएफएलडी को बेहतर इलाज के लिए माता पिता को अपने बच्चे की मदद करनी चाहिए :–

- बच्चों की खान–पान की आदतों में सुधार करें
- ऐसे पेय पदार्थ पीने से बचें जिनमें शर्करा मिली हो
- चीनी, स्टार्च और वसा से भरपूर ''फास्ट फूड'' से बचें
- शारीरिक रूप से अधिक सक्रिय रहें

दवाएं हमेशा चिकित्सक की देख रेख में ही बच्चों को देनी चाहिये। अनेक एलोपैथिक दवाएं अनुचित रूप से सेवन करने पर यकृत को नुकसान पहुंचा सकती है। आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में बच्चों में एनएएफएलडी की चिकित्सा के लिए कोई भी दवा उपलब्ध नहीं है। कुछ बच्चों में NASH के उपद्रव स्वरूप यकृत सिरोसिस उत्पन्न हो जाता है। इस अवस्था में दवाओं और शल्य क्रिया का प्रयोग किया जाता है । यदि सिरोसिस के कारण लीवर खराब हो जाता है, तो बच्चे को लीवर प्रत्यारोपण की आवश्यकता हो सकती है।

बच्चे का आहार एनएएफएलडी को रोकने या उसका इलाज करने में कैसे मदद कर सकता है ?

स्वस्थ आहार खाने, भोजन उचितमात्रा में सेवन करने से और वय अनुसार उचित वजन बनाए रखने से बच्चों में एनएएफएलडी को रोकने में मदद मिल सकती है। अधिक वजन वाले या मोटापे से ग्रस्त बच्चों के लिए जिनमें एनएएफएलडी है, चिकित्सक धीरे–धीरे वजन घटाने की सलाह देते हैं। स्वस्थ आहार लेना, चीनी युक्त पेय पदार्थों से परहेज करना और अधिक सक्रिय रहने से वजन को नियंत्रित करने और एनएएफएलडी में सुधार करने में मदद मिल सकती है। माता पिता को यह सुनिश्चित करना होगा की बच्चों को उचित पोषण मिले जो वृद्धि और विकास के लिए महत्वपूर्ण है। चिकित्सक बच्चे को संतुलित आहार की योजना बनाने में मदद के लिए आहार विशेषज्ञ के पास भेज सकते हैं।

आयुर्वेद की एनएएफएलडी के बचाव एवं उपचार में भूमिका –

लिवर को योग, आयुर्वेद के जरिए ज्यादा बेहतर रखा जा सकता है, जिसमे से कुछ उपाय निम्नलिखित हैं –

- **गिलोय** : गिलोय को आयुर्वेद में अमृत के समान माना जाता है लिवर को हेल्दी रखने में भी गिलोय बहुत कारगर है। ये पाचन क्रिया को मजबूती प्रदान करना, शरीर में इम्युनिटी बढ़ाने का भी कार्य करता है। इससे लिवर में किसी भी प्रकार के संक्रमण का खतरा भी कम हो जाता है। फैटी लिवर से पीड़ित लोगों के लिवर से टॉक्सिस को बाहर निकालने में भी गिलोय मददगार है।
- **आंवला** : फैटी लिवर की समस्या से पीड़ित रुग्णो को को आंवला जरूर सेवन करना चाहिएद्य आंवला विटामिन सी, फाइबर, विटामिन ए, विटामिन बी और आयरन से भरपूर है। आंवला खाने से इम्यूनिटी मजबूत होती है. आंवला पेट पाचन तंत्र और लिवर के लिए भी फायदेमंद है। आवंला में भरपूर एंटीऑक्सीडेंट होते हैं। इससे बॉडी डिटॉक्स होती है और विषाक्त पदार्थ बाहर निकलते हैं जो लिवर को हेल्दी बनाते है। इसके अलावा आंवला का सेवन हाइपरलिपिडिमिया और

मेटाबोलिक सिंड्रोम को भी कम करता है। आंवला पाचन तंत्र को मजबूत बनाता है और लिवर के फंक्शन को ठीक करता है। आंवला को आप किसी भी रुप में खा सकते हैं, लेकिन फैटी लिवर होने पर आंवला को काला नमक मिलाकर खाना अधिक लाभदायक है। सुबह शाम आंवला का स्वरस भी पी सकते हैं।

- **हल्दी** : हल्दी में एंटी – ऑक्सीडेंट्स पाए जाते हैं जो लिवर में मौजूद सेल्स को मजबूत बनाने में कारगर हैं। शरीर के इम्युन सिस्टम को भी मजबूत बनाने में भी हल्दी विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। मजबूत इम्युनिटी के कारण लिवर में किसी प्रकार के संक्रमण होने का खतरा भी घटता है। इसके लिए रोज रात को सोने से पहले हल्दी वाले दूध का सेवन लाभदायक हो सकता है।
- **भूमि आमलकी** : लीवर से संबंधित सभी विकारों के लिए यह सर्वोत्तम दवा मानी जाती है। यह अक्सर हेपटोमेगाली और गंभीर सिरोसिस लीवर की स्थिति में प्रयोग किया जाता है। उचित मार्गदर्शन के साथ इस पौधे का नियमित सेवन लीवर को आगे की समस्याओं से बचाने के लिए एक प्रभावी तरीके के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।
- **पिप्पली** : लिवर से जुड़ी समस्याओं में भी आराम दिलाता है। पिप्पली में पिपरिन, ग्लूकोसाइड्स और पिपलार्टिन पाया जाता है, जो लिवर को मजबूत बनाता है। शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है।
- **त्रिफला** : आयुर्वेद में कई ऐसी चीजें मौजूद हैं, जिनके इस्तेमाल से सेहत को कई फायदे हो सकते हैं। उन्हीं में से एक औषधी है, जिसका नाम है त्रिफला । त्रिफला के पोषक तत्वों की बात की जाए तो इसके अंदर एंटी बैक्टीरियल, एंटी वायरस, एंटीपायरेटिक, विटामिन सी, anti-diabetic, एंटी इन्फ्लेमेटरी, एंटीमाइक्रोबियल्स, एंटीऑक्सीडेंट आदि गुण पाए जाते हैं जो सेहत को कई समस्याओं से दूर रख सकते हैं। वहीं त्रिफला का पानी भी सेहत के लिए बेहद उपयोगी साबित हो सकता है।
- **पञ्चकर्म** – यकृत विकारों में आयुर्वेद वर्णित पञ्चकर्म चिकित्सा पद्धति भी बहुत लाभप्रद है। **विरेचन क्रिया** लिवर सिरोसिस की समस्या कब्ज या जंक फूड खाने के कारण भी हो सकती है। ऐसे में शरीर में अधिक मात्रा में विषाक्त तत्व जमा हो जाते हैं। आयुर्वेद में इन विषाक्त तत्वों को शरीर से बाहर निकालने के लिए पंचकर्म के अंतर्गत विरेचन क्रिया करवाई जाती है। विरेचन क्रिया के तहत मरीज को कुछ औषधियों का सेवन करवाया जाता है। इससे मरीज को दस्त लगता है जिससे शरीर में मौजूद सभी, टॉक्सिंस बाहर निकल जाते हैं। इस क्रिया को आयुर्वेदिक एक्सपर्ट अपनी देखरेख में ही करवाते हैं। बिना डॉक्टर की सलाह के इस क्रिया का करने से बचें।

खानपान और जीवनशैली उचित बदलाव

- अपने आहार में ताजे फल और सब्जियां शामिल करें।
- अधिक फाइबर युक्त खाद्य पदार्थ खाएं, जैसे फलियां और साबुत अनाज।
- बहुत अधिक नमक, ट्रांस वसा, परिष्कृत कार्बोहाइड्रेट और सफेद चीनी का उपयोग बंद करें।
- शराब या शराब का सेवन बिल्कुल भी ना करें।
- खाने में लहसुन को शामिल करें, यह चर्बी को जमा होने से रोकता है।
- तले और जंक फूड के सेवन से पूरी तरह परहेज करें।
- पालक, करेला, लौकी, टिंडा, तोरी, गाजर, जैसी सब्जियों का अधिक से अधिक प्रयोग करें
- राजमा, सफेद चने, काली दाल का सेवन बहुत कम करना चाहिए
- हरी मूंग दाल और मसूर दाल का सेवन करना चाहिए।
- मेयोनीज, चिप्स, केक, पिज्जा, मिठाई, चीनी का प्रयोग बिल्कुल नहीं करना चाहिए।
- नियमित रूप से प्राणायाम करें और सुबह टहलने जाएं।

योगासन – फैटी लिवर की समस्या वाले लोग कई तरह के योगासनों को दिनचर्या में शामिल करके अद्भुत स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर सकते हैं। योग, लीवर की कार्यक्षमता को बढ़ाने के साथ–साथ लिवर एंजाइमों को उत्तेजित करने में सहायता प्रदान करते है। योगासन, लिवर पर दबाव डालते हैं जिसके परिणामस्वरूप लिवर को मजबूत बनाने के साथ–साथ इसके समग्र कार्य में सुधार किया जा सकता है।

- **कपालभाति प्राणायाम** – कपालभाति प्राणायाम, सांस लेने के बेहतर अभ्यासों में से एक है जो लिवर को उत्तेजित करने में मदद करने और इसकी कार्यक्षमता को बढ़ाने में सहायक है। कपालभाति प्राणायाम लिवर पर दबाव बनाकर रक्त संचार को ठीक रखने अंगों के कार्यों को बेहतर बनाने और लिवर से स्रावित होने वाले एंजाइमों – हार्मोन्स को व्यवस्थित रखने में मदद करता है। कपालभाति प्राणायाम का अभ्यास लिवर में अतिरिक्त फैट के जमाव को रोकने में भी सहायक है।
- **मत्स्यासन योग** – मत्स्यासन योग या फिश पोज का अभ्यास, लिवर को उत्तेजित और मजबूत करने में मदद करता है।

यह लिवर पर दबाव बढ़ाकर उसे स्वस्थ रखने और फाइब्रोसिस, एपोप्टोसिस, इंफ्लामेशन को दूर करके लिवर को मजबूत बनाने में मदद करता है। मत्स्यासन योग का अभ्यास लिवर के साथ–साथ पेट के अन्य अंगों, पीठ और कमर की समस्याओं को कम करने में भी आपके लिए मददगार हो सकता है।

- **धनुरासन योग** – धनुरासन का अभ्यास लिवर को मजबूती देने और इसे स्ट्रेच करने में मदद करता है। यह लिवर में जमा अतिरिक्त फैट को कम करने के साथ लिवर से संबंधित तमाम तरह की स्वास्थ्य समस्याओं के खतरे को कम करने में भी सहायक है। पाचन स्वास्थ्य को ठीक रखने और पीठ के ऊपरी हिस्से की मांसपेशियों को स्वस्थ बनाए रखने में भी यह सहायक योगासन है। धनुरासन योग का अभ्यास फैटी लिवर के जोखिम को कम कर सकता है।

नोट – इस तरह के किसी भी उपचार / दवा / डाइट पर अमल करने से पहले चिकित्सक की सलाह जरूर लें.

मानसिक स्वास्थ्य एवं किशोरावस्था

वैद्या सोनम, वैद्य महापात्र अरुणकुमार, वैद्य राजगोपाल

विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के कथन अनुसार स्वास्थ्य की परिभाषा न कि केवल बीमारी या दुर्बलता की अनुपस्थिति है, अपितु प्रत्येक मनुष्य के पूर्ण शारीरिक, मानसिक और सामाजिक कल्याण की स्थिति है। स्वास्थ्य की यह आधुनिक परिभाषा आयुर्वेद में वर्णित परिभाषा से मिलती जुलती है। आयुर्वेद का प्रयोजन मूलतः इसी पर आधारित है, जिसके अनुसार स्वस्थ के व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा करना एवं व्याधि की स्थिति में उसकी चिकित्सा करना ही आयुर्वेद का मूल प्रयोजन है।किशोरावस्था शारीरिक, मानसिक और मनोवैज्ञानिक विकास का एक परिवर्तनकाल चरण है, जो यौवन से वयस्कता तक की अवधि के दौरान होता है। किशोरावस्था आमतौर पर बाल्यकाल से जुड़ी होती है, लेकिन इसकी शारीरिक, मनोवैज्ञानिक या सांस्कृतिक अभिव्यक्तियाँ पहले भी शुरू हो सकती हैं। वर्ल्ड हेल्थ आर्गेनाइजेशन के अनुसार, किशोर (10–19 वर्ष के) दुनिया की कुल आबादी का छठा हिस्सा (लगभग 16%) हैं, जबकि भारत में यह गणना कुल आबादी का 20.9% है। किशोरावस्था व्यस्कता की आधारभूत अवस्था है। इस समय में होने वाले जीवन के शुरूआती नकारात्मक अनुभवों एवं किशोरों के परिवेश तथा परिपालन का सीधा सम्बन्ध उनके स्वास्थ्य और विकास को प्रभावित करता है। अतः इस परिवर्तन के काल में किशोरों की शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा करना अत्यंत आवश्यक है।

सामान्य मानसिक स्वास्थ्य स्थितियाँ जैसे डेवलपमेंटल डिसेबिलिटी (विकासात्मक विकलांगता), अवसाद, चिंता और अन्य व्यवहार संबंधी विकार, आचरण सम्बन्धी विकार, आहार सम्बन्धी विकार (एनोरेक्सिया नर्वोसा और बुलिमिया नर्वोसा) किशोरों में बीमारी और विकलांगता का प्रमुख कारण पाए गए हैं। यह देखा गया है कि इनमें से अधिकांश समस्याएं (लगभग 50%) 14 वर्ष की आयु तक शुरू हो जाते हैं, लेकिन आधुनिक युग में व्यस्त जीवनशैली के कारण इसका पता देर में लगता है, इसी कारण उपचार का सही समय निकल जाता है। पिछले दो दशकों के दौरान, बच्चों और किशोरों में मानसिक स्वास्थ्य स्थितियों में वृद्धि (लगभग 4 मिलियन) दर्ज की गई है। भारत में हुए राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण (एनएमएचएस 2015–2016) के अनुसार; 13–17 वर्ष के आयु वर्ग में मानसिक विकारों की व्यापकता लगभग 7.3% है। भारत में सबसे आम प्रचलित मानसिक स्वास्थ्य स्थितियाँ – अवसादग्रस्तता (डिप्रेसिव एपिसोड) और आवर्तक अवसादग्रस्तता विकार (रेकर्रेंट डिप्रेसिव डिसऑर्डर) (2.6%), एगोराफोबिया (2.3%), बौद्धिक विकलांगता (1.7%), ऑटिज़्म स्पेक्ट्रम विकार (1.6%), फ़ोबिक एंग्जायटी विकार (1.3%) और मानसिक (सायकोटिक) विकार (1.3%) हैं। यूनिसेफ के आंकड़ों के अनुसार विश्व स्तर पर, किशोरों में होने वाली सभी मानसिक समस्याओं में चिंता (एंग्जायटी–8%) और अवसाद (डिप्रेशन–4.4%) आजकल सबसे प्रमुख होते जा रहे हैं, इनका योगदान सभी मानसिक समस्याओं में लगभग 42.9% है। चिंता और अवसाद दोनों में ही मूड में तेजी से और अप्रत्याशित बदलाव जैसे समान लक्षण दिखते हैं। अवसाद जैसी समस्याओं के गंभीर परिणाम आत्महत्या का कारण बन सकते हैं। उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार, 15–19 वर्ष की आयु के लोगों में आत्महत्या और खुद को नुकसान पहुंचाना (सेल्फ–हार्म) जैसे मृत्यु के प्रमुख कारणों में से एक हैं। 2021 की गणना के अनुसार, लगभग 5 में से 1 (22%) किशोरों में आत्महत्या का प्रयास करने की सूचना प्राप्त हुई और लगभग 10% ने आत्महत्या का प्रयास किया। किशोरों के जीवन के सभी पहलुओं में मानसिक स्वास्थ्य बहुत महत्वपूर्ण है और भावी जीवन की गुणवत्ता में सुधार, सामाजिक–आर्थिक विकास, मानव पूंजी को मजबूत करने और अधिक विकसित देश और दुनिया के लिए यह अत्यंत आवश्यक है। वहीं दूसरी ओर, किशोरों के अनुचित मानसिक एवं सामाजिक विकास का बाद के जीवन में दीर्घकालिक प्रभाव हो सकता है, जिसमें मादक द्रव्यों का सेवन, दुर्घटनाओं की आशंकाएं, जीवन की गुणवत्तापर प्रभाव आदि प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त ख़राब मानसिक स्वास्थ्य, स्कूल में अनुपस्थिति, खराब शैक्षणिक प्रदर्शन, जोखिम लेने वाले व्यवहार, खराब सामाजिक व्यवहार के साथ–साथ शारीरिक स्वस्थता को भी प्रभावित करता है। अन्य व्यवहार संबंधी विकार (बेहेवियर डिसऑर्डर) और आचरण विकार (कंडक्ट डिसऑर्डर) के परिणामस्वरूप किशोरों में आपराधिक प्रवृत्ति अथवा व्यवहार हो सकता है। खराब मानसिक स्वास्थ्य का यह समग्र बोझ कोविड–19 महामारी के संदर्भ में और अधिक बढ़ के देखने को पाया गया है। वर्तमान में, मौजूदा स्वास्थ्य सुविधाओं में मानसिक स्वास्थ्य सेवाएं सबसे अधिक उपेक्षित क्षेत्र है। मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं की अवहेलना के लिए,समाज में इसके प्रति जागरूकता की कमी, लक्षणों का गलत तरीके से मूल्याङ्कन, संसाधनों की कमी, मानसिक स्वास्थ्य विशेषज्ञों की कमी, अप्रशिक्षित स्वास्थ्य सेवाकर्मी, निम्न–सामाजिक–आर्थिक स्थितियाँ और मानसिक व्याधि जैसी स्थिति के लिए चिकित्सा लेना जैसे अनेक प्रमुख कारण हैं।

मानसिक समस्याओं के लिए सबसे आवश्यक कदम है–लक्षणों की पहचान करना। आज की व्यस्त जीवनशैली में माता–पिता अपने बच्चों का भलीभांति ध्यान नहीं रख पाते हैं, जिसके कारण समय रहते किशोरों द्वारा महसूस

अखिल भारतीय आयुर्वेद संस्थान, नई दिल्ली

किये गए भावनाओं को समझना मुश्किल होता हैं जो बाद में व्याधि का रूप धारण करते है। मानसिक स्वास्थ्य विकारों के लिए शीघ्र निदान को सबसे अच्छा उपचार माना जाता है। अतः इस से सम्बंधित लक्षणों का ज्ञान होना अत्यावश्यक है। किशोरों में अचानक ही मूड में बदलाव आना, जैसे कि उदास या निराश महसूस करना, नींद की समस्या, वजन या भूख में बदलाव आना, भ्रमित सोच या ध्यान केंद्रित करने की क्षमता कम होना, अत्यधिक भय या चिंता महसूस करना, मित्रों और गतिविधियों से दूरी, अत्यधिक थकान, कम ऊर्जा,मादक द्रव्यों का सेवन या अपराध की अत्यधिक भावनाएँ, एवं स्वयं को दोषी या बेकार महसूस करना आदि। उपरोक्त में से एक या अधिक लक्षण प्राप्त होने पर डॉक्टर का परामर्श लेना आवश्यक है। शारीरिक व्याधि की तरह ही, इसका निदान करने कि लिए तीन प्रकार का परिक्षण शामिल है। सर्वप्रथम, शारीरिक परीक्षा (फिजिकल एग्जामिनेशन) जिसमें उन शारीरिक समस्याओं की पहचान करना चाहिए, जिनके परिणामस्वरूप मानसिक लक्षण हो रहे हैं। दूसरा, आवश्यकता होने पर प्रयोगशाला परिक्षण (लैब इन्वेस्टीगेशन), जिसके द्वारा शरीर में हो रहे परिवर्तनों की जांच कराई जाती है। इन दो परीक्षणों से व्याधि का पता न लगने पर एक मनोवैज्ञानिक मूल्यांकन कराना चाहिए, जिस से लक्षणों के होने वाले अन्य कारणों का पता लगाया जा सकता है। मनोचिकित्सक मेडिकल डॉक्टर होते हैं, और विभिन्न प्रकार के चिकित्सा और/या मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का आदेश दे सकते हैं। ये परीक्षण, लक्षणों और चिकित्सा तथा पारिवारिक इतिहास के बारे में बातचीत के साथ मिलकर, मनोचिकित्सकों को मानसिक स्वास्थ्य की स्थितियों का निदान करने में सहायता प्रदान करते हैं।

किसी भी मनोवैज्ञानिक विकार के निदान के लिए एक प्रशिक्षित मानसिक–स्वास्थ्य पेशेवर (साइकोलोजिस्ट) द्वारा मूल्यांकन करना जरुरी होता है, और आमतौर पर ये एक साक्षात्कार, विभिन्न प्रकार के व्यक्तिगत परीक्षण, एवं पृष्ठभूमि (प्रीवियस हिस्ट्री) के बारे में जानकारी पर आधारित होता है। मानसिक स्वास्थ्य जांच प्रश्नों का एक मानक सेट होता है, जो मानसिक स्वास्थ्य स्थितियों को आसानी से पहचानने का एक तरीका है। इसके माध्यम से मानसिक विकार के लक्षणों की जांच के साथ–साथ किसी व्यक्ति की मनोदशा, सोच, व्यवहार और स्मृति के बारे में जानने में मदद मिलती है। कुछ अलग–अलग प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षण जिनका उपयोग निदान को स्पष्ट करने में मदद के लिए किया जा सकता है, जैसे– बेक डिप्रेशन इन्वेंटरी (बीडीआई), गोल्डबर्ग बाइपोलर स्पेक्ट्रम स्क्रीनिंग प्रश्नावली, हैमिल्टन चिंता स्केल (एचएएम–ए) आदि। इन तरीकों से व्याधि की जाँच कर लेने पर चिकित्सा शुरू करनी चाहिए। मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं से प्रभावित अधिकांश लोगों के लिए मनोवैज्ञानिक उपचार सहायक हो सकते हैं। कुछ मानसिक स्वास्थ्य स्थितियों के लिए दवाइयों का प्रयोग भी किया जाता है । इसके अलावा अन्य सहायता विकल्प जैसे परामर्श (काउन्सलिंग), सहकर्मी सहायता और सामुदायिक सहायता सेवाएँ आदि का प्रयोग भी किया जाता है। आजकल समन्वित (इंटीग्रेटेड) चिकित्सा पद्धत्ति द्वारा सम्पूर्ण और वैकल्पिक उपचारों को तनाव और मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं के अन्य सामान्य लक्षणों को प्रबंधित करने में सहायक पाया गया है। इनमें आयुर्वेद, योग, ध्यान, अरोमाथेरेपी, हर्बल उपचार और एक्यूपंक्चर जैसी चीजें शामिल हैं। आयुर्वेद में व्याधि के दो प्रकार बताये गए हैं – शारीरिक एवं मानसिक। स्वस्थ कि परिभाषा के अंतर्गत भी शाररिक स्वस्थता के साथ–साथ मानसिक स्वस्थ्य को भी उतना ही महत्वपूर्ण बताया गया है। आत्मा, शरीर की इन्द्रियां एवं मन की प्रसन्नता को ही आरोग्य का लक्षण बताया गया है, जैसा कि WHO की आधुनिक परिभाषा में भी वर्णित है। आयुर्वेद में शारीरिक व्याधियों के साथ साथ मानसिक व्याधियों की भी चिकित्सा बताये गए है । अनेक स्थानों पर शारीरिक व्याधियों की अंतर्गत आने वाले मानसिक लक्षणों का भी वर्णन किया गया है। मानसिक व्याधियों के लिए दैवव्यपाश्रय चिकित्सा, जैसे होम, नियम, उपवास, स्वस्त्यायन, आदि चिकत्सा सूत्र बताये गए हैं। व्याधि हो जाने पर चिकित्सा प्रयोग में भी अनेक योग जैसे स्मृतिसागर रस, मानसमित्र वटी, मेध्य रसायन एवं अनेक औषधियों से निर्मित घृत आदि का वर्णन है, जिन्हे पुनः रिसर्च द्वारा उनकी प्रभावशीलता की जांच की गयी है। मानसिक स्वस्थ्य सम्बंधित अनेक लक्षणों में मूड में बदलाव तथा निद्रा सम्बन्धी परेशानियों में अश्वगंधा का प्रयोग आज एकल द्रव्य के रूप में बहुत हो रहा है। आयुर्वेद में वर्णित पंचकर्म के रूप में शिरोधारा, अभ्यंग, स्वेदन आदि भी चिकित्सा के लिए प्रयोग किये जाते हैं। नियमित योग द्वारा भी मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने में मदद मिलती है; विभिन्न आसन, अनुलोम–विलोम, भ्रामरी, ध्यान, मुद्रा, माइंडफुल्नेस्स एक्टिविटी भी लाभदायक होते हैं। परन्तु किशोरों में होने वाले इन परिवर्तनों के लिए सही चिकित्सीय परामर्श लेना अति आवश्यक है। जैसा कि ऊपर बताया गया है कि आयुर्वेद के प्रयोजन में पहला स्थान स्वस्थ के स्वस्थ्य की रक्षा करना है, उसके लिए सद्वृत्त का प्रयोग बताया गया है। सद्वृत्त को प्रत्येक मनुष्य को अपने रोजमर्रा के जीवन में स्थान देना चाहिए, जिससे मन की प्रसन्नता बनी रहती है। किशोरों में होने वाले बदलाव को ध्यान में रखते हुए मन के साथ–साथ शारीरिक स्वास्थ्य का भी ध्यान रखना चाहिए, जैसे पर्याप्त मात्रा में फल एवं हरी सब्ज़ियां लेना, पर्याप्त नींद, आराम करना, तनाव को कम करना, प्रकृति में समय बिताना, आपस में लोगों का सहयोग तथा सीखने और रचनात्मक होने के तरीके खोजना। साथ ही माता–पिता को भी इन सभी बातों का ध्यान रखना चाहिए, जिस से आने वाली पीढ़ी को एक उत्तम स्वास्थ्य प्रदान किया जा सके। अच्छी नींद और आहार संबंधी आदतों को बढ़ावा देने, सामान्य समस्याओं (मानसिक के साथ–साथ सामाजिक और यौन सम्बन्धी) का शीघ्र पता लगाने और प्रबंधन करने से दीर्घकालिक स्वस्थ जीवन शैली मिल सकती है और

वयस्कता में रुग्णता और समय से पहले मृत्यु दर को कम किया जा सकता है।

मानसिक स्वास्थ्य प्रत्येक मनुष्य के मौलिक अधिकारों में से एक है। सभी लोगों का स्वास्थ्य, शांति और सुरक्षा की प्राप्ति के लिए मौलिक है और व्यक्तियों और राज्यों के पूर्ण सहयोग पर निर्भर है। अतः इस के संवर्धन और संरक्षण में किसी भी सरकार द्वारा आवश्यक सुविधाओं की उपलब्धि सभी के लिए मूल्यवान है। विभिन्न देशों में स्वास्थ्य को बढ़ावा देने और बीमारियों, विशेषकर संक्रामक रोगों के नियंत्रण में असमान विकास एक आम ख़तरा है। बच्चे का स्वस्थ विकास बुनियादी महत्व का है; ऐसे विकास के लिए बदलते परिवेश में सामंजस्यपूर्ण ढंग से रहने की क्षमता आवश्यक है। स्वास्थ्य की पूर्ण प्राप्ति के लिए चिकित्सा, मनोवैज्ञानिक और संबंधित ज्ञान के लाभों का सभी लोगों तक विस्तार आवश्यक है। लोगों के स्वास्थ्य में सुधार के लिए जनता की ओर से उचित राय और सक्रिय सहयोग अत्यंत महत्वपूर्ण है। सरकारों की अपने लोगों के स्वास्थ्य के प्रति जिम्मेदारी है जिसे पर्याप्त स्वास्थ्य और सामाजिक उपायों के प्रावधान से ही पूरा किया जा सकता है। परामर्श या मनोचिकित्सीय सेवाएं लेना वर्षों से कलंक से घिरा हुआ है। वास्तव में, बहुत से लोग मानसिक स्वास्थ्य सेवाएँ लेना चाहते है। मानसिक स्वास्थ्य विशेषकर किशोरों को प्राथमिकता देने के लिए निर्णय लेने की आवश्यकता है, मेन्टल हेल्थ को हेल्थ पालिसी में शामिल करना, स्कूल में तथा विभिन्न स्थानों पर सम्बंधित गतिविधियाँ तथा प्रोग्राम बनाये जाने चाहिए, जो भावी युवाओं के पहुँच में हों। किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने और उसकी रक्षा करने से लोक स्वास्थ्य, आर्थिक और जनसांख्यिकीय लाभ के साथ–साथ, त्रिपक्षीय स्वास्थ्य लाभांश की उपलब्धि होती है, अर्थात – वर्तमान किशोरों के लिए, किशोरों के भविष्य के जीवन के लिए और अगली आने वाली पीढ़ी के लिए भी। इसके लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा प्रत्येक वर्ष 10 अक्टूबर को ''विश्व मानसिक स्वास्थ्य दिवस'' घोषित किया गया है। वर्ल्ड फेडरेशन फॉर मेंटल हेल्थ द्वारा निर्धारित 2023 के विश्व मानसिक स्वास्थ्य दिवस का विषय ''मानसिक स्वास्थ्य–एक सार्वभौमिक मानव अधिकार'' है। इसी प्रकार जीवन में मानसिक स्वास्थ्य और कल्याण के महत्व के बारे में जागरूकता बढ़ाने हेतु मानसिक स्वास्थ्य जागरूकता माह की स्थापना की गई थी, जिसके अंतर्गत मई माह को ''मानसिक स्वास्थ्य जागरूकता माह'' बनाया गया है।अतः इस संदेश को सभी को स्वयं अपनाते हुए, आगे बढ़ावा देना चाहिए कि – **प्रसन्न रहें, स्वस्थ रहें।**

मातृ स्वास्थ्य संरक्षण में आयुर्वेद की भूमिका

डॉ. मीता झाला

सुखी एवं स्वस्थ मातृत्व प्रत्येक महिला के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि एक स्वस्थ महिला ही स्वस्थ सन्तान को जन्म दे सकती है, स्वस्थ सन्तान ही स्वस्थ राष्ट्र की परिकल्पना को साकार कर सकती है। हमारे विश्व में प्रतिवर्ष 5 लाख महिलाएँ गर्भावस्था एवं प्रसव सम्बन्धित कारणों से मृत्यु को प्राप्त हो रही हैं। मातृ एवं शिशु के स्वास्थ्य की देखभाल द्वारा हम मातृमृत्युदर एवं शिशु मृत्युदर में कमी ला सकते हैं।

मातृ शिशु स्वास्थ्य संरक्षण में आयुर्वेद विज्ञान भी अपनी महती भूमिका सिद्ध कर रहा है। आयुर्वेद में स्त्री ही 'मूलं अपत्यानाम्' कहकर सन्तान का मूल कारण स्त्री को मानकर स्त्री के स्वास्थ्य संरक्षण की बात सर्वोपरि कही गई है।

एक स्त्री के प्रजोत्पादन आयु से पूर्व किशोरी अवस्था वह सन्धिकाल है, जिसमें बाल्यावस्था से युवावस्था तक विभिन्न प्रकार के शारीरिक,मानसिक,हार्मोनल आदि परिवर्तन होते रहते हैं। किशोरी अवस्था में यौनावस्था आगमन के चिन्ह रूप में प्रथम रजोदर्शन होता है इसके बाद प्रत्येक माह मासिक चक्र का आना तथा रजोनिवृति का होना यह सभी स्त्री के जीवन काल में होने वाला प्रमुख प्रजोत्पादन आयु में चलने वाला घटनाक्रम है।

एक स्त्री के स्वास्थ्य को संरक्षित करने के उपाय किशोरी अवस्था से लेकर गर्भाधान पूर्व परिचर्या गर्भिणी परिचर्या, सूतिका परिचर्या एवं रजोनिवृत्ति काल तक करने वाली परिचर्या रूप में समाहित किये जा सकते है।

स्त्री के स्वास्थ्य संरंक्षण को हम निम्न बिन्दुओं में विभाजित कर सकते हैं।

1. किशोरी अवस्था में स्वास्थ्य संरक्षण
2. गर्भाधान पूर्व विशेष परिचर्या
3. गर्भिणी परिचर्या
4. सूतिका परिचर्या

1. किशोरी अवस्था में स्वास्थ्य संरक्षण –

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार 10 वर्ष से लेकर 19 वर्ष तक की आयु को किशोरी अवस्था माना जाता है। इस अवस्था में स्वास्थ्य संरक्षित करके हम प्रजोत्पादन आयु में होने वाले विकारों की रोकथाम कर सकते हैं। एक किशोरी के स्वास्थ्य सम्बन्धित विषयों पर ध्यान केन्द्रित कर मासिक चक्र के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जागरुकता कार्यक्रम, मासिक चक्र के दौरान स्वस्थवृत एवं खान–पान, विहार आदि का पालन कर युवावस्था में होने वाले विभिन्न विकारों से निजात पा सकते हैं।

मासिक चक्र के दौरान साफ सुथरे कपड़े का प्रयोग एवं सेनेटरी नैपकीन के प्रयोग पर जोर, किशोरी को लौहयुक्त औषधियों, कृमिमुक्त औषधियाँ एवं प्रोटीन युक्त आहार, यौगिक अभ्यास, ध्यान इत्यादि को दिनचर्या रूप में समाहित करना है, इसी के साथ किशोरी को मासिक चक्र के दौरान उष्ण जल, उष्ण खाद्य द्रव्यों का प्रयोग, अम्ल रसों का निषेध, शीतल आहार से परिवर्जन करना चाहिए। मासिक चक्र से उत्पन्न होने वाला भय, शंकाओं का समाधान, व्यक्तिगत परामर्श एवं सामूहिक परिचर्चा द्वारा किया जा सकता है। किशोरी अवस्था में आहार पूर्ण रूप से सन्तुलित होना चाहिये । हरी सब्जियॉ ,पालक, बथुआ, मेथिका, लौकी, चुकन्दर, पत्तागोभी का प्रयोग तथा फलों में पपीता, सेव, अनार का प्रयोग करना चाहिए। प्रोटीन की पूर्ति दालों से, सोयाबीन से करनी चाहिए। कैल्शियम की पूर्ति दूध एवं दूध से बने उत्पाद दही, छाछ, पनीर, लस्सी आदि से करनी चाहिए। वसा के अत्यधिक प्रयोग से बचना चाहिए। किशोरियों को आमलकी, गुडूची, अश्वगंधा, बला, मधुयष्टि, कुमारी जैसी औषधियों का प्रयोग भी करवाया जा सकता है।

सहायक आचार्या, स्नातकोत्तर प्रसूति तंत्र एवं स्त्री रोग विभाग, पी.जी.आई.ए..
डॉ.सर्वपल्ली राधाकृष्णन् राजस्थान आयुर्वेद विश्वविद्यालय, जोधपुर

2. गर्भाधान पूर्व विशेष परिचर्या –

गर्भधारण से पूर्व स्त्री की विशेष परिचर्या गर्भाधान में सहायक होने के साथ–साथ उत्तम सन्तति में भी सहायक हो सकती है। स्त्री के स्वास्थ्य संरक्षण के साथ–साथ गर्भाधान हेतु शरीर को उत्कृष्ट करने एवं उत्तम बीजोत्पत्ति के साथ, उत्तम क्षेत्र के लिए विशेष परिचर्या गर्भाधान से 6 माह पूर्व अति आवश्यक है। इस क्रम में महिला को पंचकर्म प्रक्रिया द्वारा शरीर शुद्धि करना आवश्यक है। महिला को विशेष रूप से अनुवासन बस्ति, उत्तर बस्ति देकर गर्भाधान प्रक्रिया को सरल बनाया जा सकता है। उत्तम बीजों अर्थात् बिना किसी क्रोमोसोम विसंगतियों के अण्डाणु को उत्पन्न करवाना, निषेचन प्रक्रिया हेतु जीवनीय द्रव्यों जैसे दूध. घी, शतावरी, आमलकी, काकोली, क्षीरकाकोली का प्रयोग करवाया जा सकता है। अत्यधिक उष्ण, मसालेदार आहार पूर्ण रूप से वर्जित करवाना चाहिए। सन्तुलित एवं पोषक आहार के साथ–साथ गर्भाधान हेतु सही उम्र (21–26 वर्ष) के चयन पर भी ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। गर्भाधान के समय महिला के मानसिक उन्नयन के लिए भी विशेष परामर्श–परिचर्चा करना आवश्यक है।

3. गर्भिणी परिचर्या –

गर्भवती महिला के सम्पूर्ण गर्भावस्था काल में की जाने वाली विशेष परिचर्या अर्थात् गर्भवती की देखभाल ही परिचर्या है। मातृ मृत्यु दर को कम करने में गर्भिणी परिचर्या एक महत्वपूर्ण आधारशिला है। आयुर्वेद के सिद्धान्तों के अनुरूप गर्भवती की परिचर्या विशेष आहार, विहार एवं औषधियों द्वारा सम्भव है। स्त्री के जीवन काल का सबसे महत्वपूर्ण काल गर्भावस्था काल होता है गर्भावस्था काल में कुछ आवश्यक बातों को ध्यान में रखकर वह स्वस्थ भी रह सकती है तथा स्वस्थ शिशु को जन्म दे सकती है। गर्भवती के आहार में हरी पत्तेदार सब्जियाँ, ताजे फल, सूखे मेवे जैसे–बादाम, अखरोट ,अंजीर, मुनक्का इत्यादि का प्रयोग, दूध एवं दूध से बने विशेष उत्पाद, दालों का प्रयोग(चना,मूंग), सोयाबीन, वसायुक्त आहार में घृत, मक्खन का प्रयोग विशेष रूप से करना चाहिए। गर्भवती को शतावरी, मधुयष्टि, बला, अश्वगन्धा, आमलकी इत्यादि का चूर्ण, मंडूरभस्म, पुनर्नवामंडूर, धात्रीलौह, प्रवालपिष्टी, मुक्ताशुक्ति इत्यादि का प्रयोग करवाना चाहिए। गर्भवती को मधुर रस प्रधान, शीतवीर्य, मधुरविपाकी, जीवनीय, वृंहणकारक औषधियों का प्रयोग करना चाहिए। गर्भवती को गर्भावस्था के दौरान फलघृत का प्रयोग करवाना सदैव हितकर होता है। गर्भवती महिला यदि किसी प्रकार का मानसिक तनाव में रहती है तो इसका सीधा असर गर्भस्थ शिशु पर पड़ता है इसलिए गर्भावस्था में स्त्रियों को सदैव प्रसन्न रहना चाहिए। गर्भावस्था के दौरान अधिक थकान पैदा करने वाले व्यायाम, मेहनत के काम, अत्यधिक यात्रा एकदम नही करना चाहिए। गर्भवती को कभी उपवास नहीं करना चाहिए। गर्भवती को प्रातः सांय खुली हवा में टहलना, सूक्ष्म यौगिक क्रियायें, प्राणायाम (अनुलोम व विलोम), ध्यान एवं सुगम आसन करने चाहिए ।

गर्भवती को अच्छे साहित्य का अवलोकन तथा महापुरुषों के जीवन चरित्र के ऊँचे आदर्शों का चिन्तन–मनन करना चाहिए। गर्भवती को इलेक्ट्रोनिक उपकरणों का प्रयोग कम से कम करना चाहिए। प्रथम गर्भावस्था में हल्की घबराहट एक सामान्य प्रक्रिया है। स्त्री की शंकाओं एवं चिन्ताओं का समाधान कर पारिवारिक सदस्यों द्वारा सौहार्दपूर्ण व्यवहार के लिए परामर्श देना चाहिए।

गर्भावस्था में प्रमुख रूप से एनिमिया होता है अर्थात् खून की कमी होती है इससे बचने के लिए पालक, बथुआ, मेथी, सरसों, गाजर का साग, टमाटर, चुकन्दर, खीरा, अनार, आंवले का मुरब्बा, इक्षुरस. अंजीर, मुनक्का, काला चना, गुड इत्यादि का प्रयोग करना चाहिए।

गर्भवती महिलाओं को पसीना ज्यादा आता है क्योंकि गर्भावस्था में चयापचय दर 20 प्रतिशत बढ़ जाती है इसलिए उन्हें हल्के एवं ढीले परिधान पहनना चाहिए।

गर्भावस्था के दौरान शारीरिक, मानसिक एवं हार्मोनल परिवर्तनों का प्रभाव त्वचा पर भी पड़ता है। गर्भावस्था के दौरान शुष्क त्वचा एवं खुजली की समस्या उत्पन्न होती है इस हेतु नारीयलतेल, तिलतेल का अभ्यंग एवं साबुन के स्थान पर बेसन, हल्दी, सरसों तेल से बने उबटन का प्रयोग किया जाना चाहिए।

गर्भावस्था के समय जब गर्भ बढ़ता है तो पेट पर गुलाबी सफेद या गहरी भूरे रंग की धारियाँ हो जाती है। ये निशान त्वचा में फैलाव के कारण पैदा होते है इसलिए तिल तैल, ऐलोवेरा, कुमकुमादि तैल, नारीयलतेल, कपूर का प्रयोग मालिश में किया जाना चाहिए।

गर्भावस्था में दाँतो की भी विशेष देखभाल आवश्यक है इस हेतु त्रिफला, बकुल, अनार, लोघ्र, खदिर, यष्टीमधु आदि के पाउडर में थोड़ा स्फटिक पाउडर मिलाकर दॉतों पर दो बार मंजन करना चाहिए। गर्भावस्था में महिला किसी भी प्रकार का मशीनी ट्रीटमेन्ट, लेजर थैरेपी, फोटो फेशियल, कैमिकल युक्त कॉस्मेटिक का प्रयोग कदापि न करे इससे गर्भस्थ शिशु पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है।

4. सुतिका परिचर्या –

प्रसव के बाद स्त्री शरीर से अपरा के निकलने के साथ स्त्री की संज्ञा सूतिका या प्रसूता हो जाती है। प्रसव के बाद से लेकर 1½ माह या 45 दिन के समय को सूतिका काल कहा जाता है। गर्भावस्था के दौरान स्त्री जननांग और गर्भाशय के साथ–साथ शरीर में विभिन्न मनोदैहिक परिवर्तन होते हैं। प्रसवोपरान्त स्त्री नवप्रसूता कहलाती है, इस काल में शारीरिक रूप से बहुत नाजुक होती है। आयुर्वेद के आचार्यो द्वारा भी ऐसी स्त्री को शून्य शरीरा कहा गया है अर्थात् प्रसूतास्त्री धातुक्षीण अवस्था एवं वातप्रकोप की अवस्था से युक्त रहती है इस स्थिति में सूतिका को विशेष देखभाल की आवश्यकता होती है।

सूतिकास्त्री को छः सप्ताह की अवधि तक जिस परिचर्या का पालन करना होता है उसी को सूतिका परिचर्या कहा जा सकता है। सूतिका परिचर्या से स्त्री शरीर में क्षीण धातुओं की वृद्धि, वातदोष का शमन, शरीर में स्थिरता एवं सुदृढ़ता, उचित स्तनपान एवं सूतिका काल में होने वाले रोगो से बचा जा सकता है।

प्रसवोपरान्त कुछ दिनों तक रक्तस्राव (लोकियल डिस्चार्ज) होता है, इसके लिए साफ, शुष्क सूती मुलायम वस्त्र या सेनेटरी नैपकीन का प्रयोग करना चाहिए। सैनेटरी नैपकीन या कपडा दिन में 5–6 बार बदलना आवश्यक है। गर्भाशय की शुद्धि के लिए पंचकोलचूर्ण, गुड का पानी, सौंठपाक आदि दिया जाना चाहिए।

प्रसूता को सादा पानी देने की बजाय अजवायन डालकर उबाला गया पानी पीने को देना चाहिए, इससे गर्भाशय में कीटाणु नहीं होते हैं, उदर में वायु नही बनती, विबन्ध नहीं होता, भूख खुलकर लगती है। दुग्ध का उत्पादन भी अच्छा होता है।

प्रसूता स्त्री को प्रसवोपरान्त बलातेल से शारीरिक अभ्यंग कर उदर पर विशेष रूप से बलातेल से मृदु अभ्यंग करवाकर सूती कपडे का कुक्षि, कटिप्रदेश पर उदर के चारों ओर से पट्टबन्धन करना चाहिए।

इसके उपरान्त नीम के पत्तों को पानी में उबालकर उसमें बालसुधा मिलाकर योनि की सफाई प्रक्षालन करना चाहिए । योनिव्रण को पंचक्षीरी वृक्षों के क्वाथ से धोकर जात्यादि घृत व रोपण शशांक घृत का प्रयोग व्रण रोपण के लिए करना चाहिए। प्रसूति काल में सिर पर घी (गोघृत) एवं कायफल चूर्ण को मिलाकर मालिश करनी चाहिए एवं सिर पर कपड़ा बान्ध कर रखना चाहिए।

प्रसूता स्त्री को अजवायन, सौठ, गोन्द, पिप्पली, पिप्पलीमूल, लोध्र, कमरकस, खर्जुर, सूखेमेवे, घृत, गुड, खसखस, नारीयल गिरी, दालचीनी, लोंग, इलायची आदि गेहूं के आटे में मिलाकर लड्डू बनाकर दिया जा सकता है। इससे प्रसूतिजन्य दुर्बलता दूर होकर धातुपोषण होता है।

प्रसूता को कटिशूल, सन्धियों में शूल होता रहता है, इसके लिए मेथी के बीज का चूर्ण मिलाकर लड्डू बनाकर देना चाहिए। मेथी की सब्जी खाने से भी कमरदर्द नही रहता है। काले तिल. अजवायन. सुआ दाना सेककर दिन में 7–8 बार थोडा–थोडा चबाकर खाना चाहिए। प्रसूता को कब्ज से बचाने के लिए दूध में मुनक्का एवं अंजीर उबालकर प्रसूता को पीने के लिए कम से कम 3–4 गिलास दिन भर में देना चाहिए।

प्रसूता आहार पोषण से भरपूर होना चाहिए। आहार में खिचडी, दलिया, हरी पत्तेदार सब्जियों का शाक, लौकी, कुष्माण्ड आदि देना चाहिए। सूखे मेवे का हलवा, गोंद, सौंठ के लडडू, मखाने की खीर, दलिया, दूध आदि का प्रयोग विशेष रूप से करना चाहिए। पालक का सूप एवं पालक के साथ मूंग दाल का प्रयोग प्रतिदिन करना चाहिए ताकि लौह तत्व एवं प्रोटीन की पूर्ति प्रसूता में हो जाए।

प्रसूता स्त्री को शतावरी चूर्ण, असगन्ध चूर्ण दूध के साथ आवश्यक रूप से देना चाहिए। प्रसूता को सिंघाड़े का चूर्ण भी आहार में अवश्य प्रयुक्त करना चाहिए।

सूतिका या प्रसूता को सूतिका काल में होने वाले विकारों से बचाने के लिए दशमूल क्वाथ, देव–दार्व्यादि क्वाथ, सौभाग्य शुण्ठीपाक, पंचजीरक पाक, जीरकाद्यारिष्ट, दशमूलारिष्ट, बलारिष्ट आदि का प्रयोग करना चाहिए। प्रसूता स्त्री को अगरु, कुष्ठ, निम्बपत्र, हरिद्रा, सरल, हिंगु, गुग्गलु इत्यादि औषधियों को मिलाकर योनिधूपन करवाना हितकर होता है। प्रसूता काल में आमलकी चूर्ण में सैन्धव नमक मिलाकर दॉतो पर मंजन करना चाहिए।

प्रसूता स्त्री को क्रेक निप्पल की समस्या हो जाती है इस हेतु घी या नारीयल तेल का प्रयोग किया जा सकता है। प्रसूता स्त्री को स्तन्य की कमी होने पर स्तन्य वृद्धिकर आहार में जीरा चूर्ण, विदारीकन्द चूर्ण, शतावरी चूर्ण, सौंफ, यष्टिमधु चूर्ण मिलाकर हलवा बनाकर देना चाहिए। चावल की खीर, मखाने की खीर, दूध, दलिया, घी युक्त उड़द दाल एवं गुड़, चना का प्रयोग विशेष रूप से करना चाहिए। माता के स्तन से दूध कम उतरने पर केशर को पानी में पीसकर लेप करने से दूध ठीक से उतरना प्रारम्भ कर देता है।

अत्यधिक क्रोध, चिन्ता, सन्ताप की स्थिति में स्तनपान नही कराना चाहिए। सूतिका को अत्यधिक अम्ल, तेज मिर्च–मसालेदार, अत्यधिक शीत एवं विष्टम्भी आहार नहीं देना चाहिए।

एनीमिया (रक्त की कमी) : सम्पूर्ण स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाली एक व्यापक समस्या

खुशाल कुमार[1], शालिनी राय[2]

भूमिका :

एनीमिया एक गंभीर स्वास्थ्य समस्या है जो रक्त में हीमोग्लोबिन (Haemoglobin) के स्तर की कमी से होती है। यह रोग भारत में व्यापक रूप से पाया जाता है और खासकर महिलाओं और बच्चों में अधिक देखने को मिलता है । इस लेख में, हम एनीमिया के बारे में जानकारी और इसके प्रभावों के बारे में विस्तार से चर्चा करेंगे। आयुर्वेद में एनीमिया को 'पाण्डुरोग' या 'पांडु' के नाम से जाना जाता है। आयुर्वेद में एनीमिया को रक्तविकार रोग के रूप में वर्णित किया जाता है। एनीमिया का प्रमुख कारण आहार की कमी, पित्त, रक्त, और मल के विकार हो सकते हैं।

परिचय :

एनीमिया एक ऐसी चिकित्सकीय स्थिति है जो विश्व भर में एक बड़े हिस्से के लोगों को प्रभावित करती है। यह रक्त की कोशिकाओं की संख्या में कमी या रक्त में हीमोग्लोबिन की मात्रा में कमी के कारण होती है। हीमोग्लोबिन एक महत्वपूर्ण प्रोटीन है जो रक्त की कोशिकाओं में पाया जाता है और शरीर के विभिन्न ऊतकों–अंगो तक आक्सीजन पहुंचाने में मदद करता है। इसलिए, एनीमिया शरीर के ऊतकों को सही से कार्य करने के लिए उचित ऑक्सीजन की आपूर्ति को कम करता है। इससे शरीर के अंगों और ऊर्जा संचय करने वाले प्रक्रियाओं में कमी आती है, जिससे व्यक्ति की सामान्य दिनचर्या और दैनिक गतिविधियों को प्रभावित कर सकता है जो कि एक चिंतन का विषय हो सकता है, जो आपके शरीर के सभी प्रमुख प्रणालियों को प्रभावित कर सकता है। एनीमिया एक व्यापक समस्या है, जो मात्रा में शरीर में हीमोग्लोबिन (रक्त कोषिकाओं के लिए जरूरी पोषक तत्व) की कमी के कारण उत्पन्न होता है।

एनीमिया की समस्या को समझने और उसके दुष्प्रभाव से बचने में जागरूकता और समझ का महत्व होता है। दुर्भाग्यवश, एनीमिया का अक्सर निदान (Diagnosis) नहीं हो पाता है, जिससे उचित उपचार में देरी होती है। इसलिए, यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि व्यक्तियों को एनीमिया के लक्षणों को जानने और यदि वे किसी भी लक्षण का सामना कर रहे हैं, तो उन्हें तुरन्त चिकित्सकीय सलाह लेनी चाहिए।

एनीमिया के प्रकार :

एनीमिया के प्रकार विभिन्न कारणों और रोगी की शारीरिक प्रकृति के आधार पर अलग–अलग होते हैं। व्यक्ति के सही उपचार के लिए एनीमिया के प्रकार को समझना महत्वपूर्ण है। एनीमिया के प्रमुख प्रकार निम्नलिखित होते हैं :–

1. आयरन अवशोषण की कमी से होने वाला एनीमिया (Iron Deficiency Anaemia) : आयरन एक महत्वपूर्ण पोषक तत्व है जो हीमोग्लोबिन बनाने के लिए आवश्यक होता है। शरीर में आयरन की कमी से एनीमिया उत्पन्न होता है। यह सबसे ज्यादा पाया जाने वाला एनीमिया है जो खासकर महिलाओं, बच्चों, और गर्भवती महिलाओं में अधिक मिलता है। खानपान में आयरन और फोलिक एसिड की कमी और उसका प्रतिकार नहीं होना इस के मुख्य कारण होते हैं।

2. विटामिन बी–12 या फोलिक एसिड की कमी से होने वाला (Megaloblastic Anaemia) : विटामिन बी–12 और फोलिक एसिड हीमोग्लोबिन बनाने में महत्वपूर्ण घटक होते हैं। इनकी कमी से रक्त की कोशिकाएं असामान्य रुप से बड़े और अविकसित हो जाते हैं। और उनके समय से पहले नष्ट हो जाने की संभावना बढ़ जाती है ओर खून की कमी होने लगती है।

3. आनुवंशिक एनीमिया (Thalassemia) : थैलेसीमिया एक आनुवंशिक एनीमिया का प्रकार है जिसमें हीमोग्लोबिन की उत्पत्ति में कमी होती है। यह एक गंभीर रोग है और ज्यादातर रक्त कोशिका की विकसित होने की प्रक्रिया को प्रभावित करता है। थैलेसीमिया के दो मुख्य प्रकार होते हैं – थैलेसीमिया माइनर और थैलेसीमिया मेजर। थैलेसीमिया माइनर में एनीमिया के हल्के लक्षण उत्पन्न होते है और ज्यादातर लोगो मे इसके कोई चिकित्सा की आवश्यक्ता नही पडती। थैलेसीमिया मेजर एक गंभीर स्थिति है जो खासकर बच्चों में मिलता है। इसमें रक्त कोशिका असामान्य बनती हैं जिसके कारण वे समय से पहले नष्ट हो जाती है जिसके कारण व्यक्ति को नियमित रक्त प्रदान करने की आवश्यकता होती है।

4. इन्फेक्शन से एनीमिया : बार बार इन्फेक्शन का होना भी रक्त कोशिका को प्रभावित कर सकता है जिससे एनीमिया हो

1.पी.एच. डी अध्येता,
2. सहायक प्रोफेसर, रोग निदान विभाग, अखिल भारतीय आयुर्वेद संस्थान, नई दिल्ली

सकता है। इन्फेक्शन शरीर में विषाणु, बैक्टीरिया, फंगस या परजीवी जैसे सूक्ष्मजीव के प्रवेश के कारण होता है। इन्फेक्शन रक्त कोशिका की बनावट में परिवर्तन को प्रेरित कर सकता है और इससे रक्त कोशिका के नष्ट होने का खतरा बढ़ जाता है, जो एनीमिया की स्थिति को उत्पन्न कर सकता है।

इन्फेक्शन से एनीमिया होने के प्रमुख कारण :

A. मलेरिया

B. टाइफाइड : बैक्टीरिया सालमोनेला टाइफी के संक्रमण से होता है ।

C. हीमोफिलस इंफ्लूएंजा : यह बैक्टीरिया हीमोफिलस इंफ्लूएंजा के कारण होता है ।

D. एचआईवी/एड्सः एचआईवी (एड्स) वायरस

5. इनके अलावा, कुछ और प्रकार के एनीमिया भी हो सकते हैं जैसे अप्लास्टिक एनीमिया और हेमोलिटिक एनीमिया आदि। इन प्रकारों में रक्त कोशिका के नष्ट होने की समस्या होती है। इन प्रकार के एनीमिया को सही परीक्षण के माध्यम से समय रहते पहचाना और निदान करना अत्यंत महत्वपूर्ण है। इससे व्यक्ति को समय पर उचित चिकित्सा देखभाल प्राप्त होती है और उसे उचित उपचार मिलता है। इसलिए, एनीमिया के प्रकार को समझकर व्यक्ति को स्वस्थ जीवनशैली और आहार में अनुकूल बदलाव करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है।

एनीमिया के प्रमुख कारण :

1. अशुद्ध खानपान और आहार की कमी : सही आहार लेना हमारे स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण है, और रक्त की कोशिकाओं को बनाने के लिए पर्याप्त पोषक तत्व जैसे आयरन, फोलिक एसिड, विटामिन बी–12, और विटामिन सी की आवश्यकता होती है। यदि आहार में इन पोषक तत्वों की कमी होती है या अशुद्ध खानपान के कारण वे अवशोषित नहीं हो पाते हैं, तो रक्त में हीमोग्लोबिन बनाने में असमर्थता हो सकती है और एनीमिया हो सकती है।

2. रक्त की हानि और बढ़े हुए रक्त विनाश की भरपाई करने में असमर्थता : रक्त की हानि या रक्त कोशिकाओं के नष्ट होने के कारण, समग्र रक्त कोशिकाओं की गणना में कमी हो सकती है, जिससे एनीमिया हो सकता है। रक्त गणना में यह कमी बुखार, रक्तस्राव या अत्यधिक रक्त हानि जैसी स्थितियों के परिणामस्वरूप हो सकती है।

3. हार्मोनल बदलाव, जैसे गर्भावस्था या मासिक धर्म के दौरान : महिलाओं को गर्भावस्था या मासिक धर्म के समय हार्मोनल परिवर्तन होता है, जिससे उनके रक्त की बनावट पर असर पड़ सकता है। यह रक्त की कोशिकाओं की संख्या में विशेषकर आयरन की कमी का कारण बनता है और एनीमिया को उत्पन्न कर सकता है।

4. शिशु में एनीमिया : बच्चों में जन्म के समय एनीमिया का होना सामान्य है, लेकिन कई बार यह अधिक समय तक बना रहता है और समस्या का कारण बन सकता है। इसमें खान पान में उचित पोषक तत्वों की कमी या पीडित बच्चे के रक्त में कोशिकाओं के नष्ट होने का कारण हो सकता है।

5. पाचक विकार : कुछ पाचक विकार आहार से पोषक तत्वों के संशोधन और अवशोषण में कमी कर सकते हैं और एनीमिया का कारण बन सकते हैं। जैसे क्रोन रोग, अम्ल पित्त ।

एनीमिया के लक्षण :

1. थकान और कम ऊर्जा अनुभव करना : एनीमिया में, रक्त में हीमोग्लोबिन संख्या कम होती है, जिससे रक्त शरीर के अंगों तक उचित मात्रा मे ऑक्सीजन नही पहुंचा पाता जिसके कारण शरीर मे ऊर्जा का स्तर घट जाता है और थकावट का अनुभव होता है। यह लक्षण सबसे सामान्य होता है और रोजमर्रा की गतिविधियों में बुखारीपन या अनिर्बाध थकान का कारण बन सकता है।

2. सांस लेने में परेशानी या दिल की धड़कन में बदलाव : शरीर मे ऑक्सीजन की कमी आंतरिक अंगों और दिल को अधिक काम करने के लिए मजबूर करती है। जिसके कारण व्यक्ति को सांस लेने में परेशानी और दिल की धड़कन तेज होना जैसे लक्षण विशेष रूप से शारीरिक गतिविधियों के दौरान मिलते है या बढ़ जाते है ।

3. त्वचा का पीलापन और चकत्ते हो जाना : एनीमिया में, रक्त की कमी के कारण त्वचा को पोषण प्राप्त करने में कमी हो जाती है। इससे त्वचा का रंग पीला दिखने लगता है और त्वचा रूखी, छिलने वाली और खरोंचने वाली दिखती है। कई बार त्वचा पर चकत्ते भी दिखाई देते है ।

4. बालों का झड़ना और नखों का टूटना : रक्त में हीमोग्लोबिन की कमी के कारण बालों के पोषक तत्वों की कमी हो सकती है जिससे बालों का झड़ना बढ़ जाता है। इसके साथ ही, नखों की भी पोषक तत्वों की कमी हो सकती है जिससे नखों का टूटना और कमजोर होना मिल सकता है।

5. चक्कर आना : कम हीमोग्लोबिन संख्या के कारण शरीर को पर्याप्त ऑक्सीजन प्राप्त नहीं होती है, जिससे व्यक्ति को

चक्कर आ सकता है। यह विशेष रूप से तेज गति से उठने या बैठने पर और थकावट के समय होता है।

6. भूख कम होना और खाना खाने में रुचि कम होना : एनीमिया में भूख कम हो जाती है और उन्हें खाने में रुचि नहीं होती है। इससे भी शरीर को पर्याप्त ऊर्जा मिलने में कमी होती है।

7. जीभ का सूखना और प्यास ज्यादा लगना : एनीमिया के कुछ प्रकार में, जैसे सिकल सेल एनीमिया (Sickle cell Anemia) में जीभ सूखने लगती है और व्यक्ति को प्यास ज्यादा लगती है।

8. छाती में दर्द या दिल के छलने की आवाज : कुछ गंभीर एनीमिया में, हीमोग्लोबिन की कमी के कारण शरीर को पर्याप्त ऑक्सीजन प्राप्त नहीं होती है जिससे छाती में दर्द या हृदय गति की आवाज आ सकती है। इससे रोगी को दिल के लिए घबराहट का अनुभव हो सकता है।

9. मस्तिष्क सम्बंधित लक्षण : एनीमिया में हीमोग्लोबिन की कमी के कारण मस्तिष्क को पर्याप्त ऑक्सीजन प्राप्त नहीं होती है जिससे मस्तिष्क सम्बंधित लक्षण हो सकते हैं, जैसे कि सिरदर्द, चक्कर, या भूख कम होना।

एनीमिया के उपद्रव (Complications) :

1. गर्भवती महिलाओं और गर्भस्थ शिशु में समस्याएं : गर्भावस्था के दौरान रक्त की मात्रा में कमी के कारण महिला को थकान, सूखी त्वचा, चक्कर आना, और सांस लेने में दिक्कत हो सकती है। इसके साथ ही, एनीमिया गर्भस्थ शिशु को भी प्रभावित कर सकता है, जिससे समय पूर्व प्रसव (premature delivery), नीला शिशु (blue baby), शिशु के विकास में समस्याएं और वजन की कमी इत्यादि । इसलिए, गर्भवती महिलाओं को अपने डॉक्टर से नियमित जांच करवाना और एनीमिया का उपचार करवाना आवश्यक है।

2. मानसिक प्रभाव : लंबे समय तक एनीमिया रहने से शरीर और मस्तिष्क को लम्बे समय तक यदि पर्याप्त ऑक्सीजन नहीं मिलती तो उससे दिमाग की कोशिकाएं प्रभावित हो सकती हैं। जिससे एकाग्रता स्मरण शक्ति इत्यादि प्रभावित होते है और मानसिक कार्यक्षमता कम हो जाती है। थोडे समय के बाद ये परिवर्तन स्थायी स्वरूप के हो जाते है। वृद्धावस्था मे इनके कारण से दिमागी तनाव याद्दाश्त की कमी आदि व्याधियां होने की अधिक सम्भावना होती है।

3. गंभीर एनीमिया से संबंधित जानलेवा परिणाम : यदि एनीमिया गंभीर हो जाए और समय पर उपचार न हो तो कालान्तर मे धीरे धीरे शरीर की कार्यक्षमता और व्याधिक्षमता प्रभावित हो जाती है जिससे मृत्यु भी हो सकती है।

एनीमिया से बचाव के उपाय :

1. आहार में पोषक तत्वों की पूर्ति करना : सबसे पहला और महत्वपूर्ण उपचार एनीमिया के लिए आहार में पोषक तत्वों की पूर्ति करना है। आहार में खाद्य पदार्थों को शामिल करने से शरीर को आवश्यक पोषक तत्व मिलते हैं, जिससे रक्त में हीमोग्लोबिन की मात्रा बढ़ती है। इसमें विटामिन बी–12, फोलिक एसिड, आयरन, विटामिन सी, विटामिन बी–6, और प्रोटीन जैसे पोषक तत्व शामिल हो सकते हैं। अच्छी आहारद्रव्य से भरपूर खाद्य पदार्थ खाने से एनीमिया में सुधार होता है और शरीर का ऊर्जा स्तर बढ़ता है। पालक, अंजीर, ब्रोकोली, गाजर, सेब, गुड़, मखाना, अंडे, मछली, दालें, आलू, केले, अखरोट, और अखरोट आदि एनीमिया में सुधार करने में मदद करते हैं।

2. आयरन या विटामिन बी–12 की दवाओं का सेवन : कुछ गंभीर एनीमिया मात्र आहार से ठीक नहीं होते हैं और इसके लिए चिकित्सक द्वारा आयरन या विटामिन बी–12 की दवाएं या सप्लीमेंट्स के सेवन की सलाह दी जाती है। इन दवाओं को लेने से रक्त की हीमोग्लोबिन बढ़ता है और एनीमिया में सुधार होता है। यह विशेष रूप से अधिकांश शिशु, गर्भवती महिलाएं, और बुजुर्ग व्यक्तियों के लिए फायदेमंद होता है। चिकित्सक द्वारा निर्धारित खुराक के अनुसार दवाओं का सेवन करना आवश्यक है ताकि यह व्यक्ति के शारीरिक अवस्था के अनुरूप हो।

3. नियमित जांच : एनीमिया के लिए सबसे अच्छा उपचार और रोकथाम है नियमित वैद्यकीय जाँच करवाना और शारीरिक स्वस्थ जीवनशैली अपनाना। नियमित चेक अप के माध्यम से चिकित्सक एनीमिया का समय पर पता लगा सकते हैं और उपचार को उसके अनुसार निर्धारित कर सकते हैं।

4. नियमित व्यायाम का अभ्यास करना : नियमित व्यायाम करना एनीमिया से बचने और शरीर को स्वस्थ रखने में मदद करता है। व्यायाम से शरीर की क्षमता बढ़ती है, खून का संचय होता है और खून की मात्रा में वृद्धि होती है। योग, व्यायाम, ध्यान, जॉगिंग, और एरोबिक्स जैसे व्यायाम अभ्यास से शरीर का ऊर्जा स्तर बढ़ता है और एनीमिया से बचाव होता है।

5. स्वस्थ जीवनशैली को अपनाना और स्ट्रेस को कम करना : स्वस्थ और नियमित जीवनशैली अपनाना एनीमिया से बचने में मदद करता है। अनियमित और अस्वस्थ जीवनशैली, अधिक समय तक तनाव और अशुद्ध खानपान से खून की कमी होती है, जिससे एनीमिया हो सकता है। स्ट्रेस को कम करने के लिए ध्यान, मेडिटेशन, योग, और अनुभवपूर्व शांति प्रदान करने वाले गतिविधियां करने में मदद मिलती है। इसके साथ ही, अधिक से अधिक पानी पिना, नियमित नींद लेना, और स्वस्थ

जीवनशैली अपनाना भी शरीर को एनीमिया से बचने में सहायक होता है।

6. आयुर्वेद में एनीमिया के उपचार के लिए निम्नलिखित चीजें उपयुक्त मानी जाती हैं :

औषधि चिकित्साः आयुर्वेद में पाण्डुरोग के लिए कुछ जड़ी–बूटियों और औषधियों का उपयोग किया जाता है। कई जड़ी–बूटियां रक्त उत्पत्ति को बढ़ाने, हीमोग्लोबिन को बढ़ाने, और रक्त संबंधी समस्याओं को दूर करने में सहायक होती हैं। कुछ औषधियां जैसे कि त्रिफला, आमलकी, शतावरी, आंवला, मुनक्का,खजूर,अंजीर, ब्राह्मी, शंखपुष्पी, चंदन, और मंजिष्ठा पाण्डुरोग के उपचार में उपयोगी होती हैं।

आयुर्वेद के इन उपायों को संयुक्त रूप से अपनाने से एनीमिया के लक्षणों में सुधार हो सकता है और शरीर को रक्त की मात्रा में सुधार होने में मदद मिल सकती है। हालांकि, एनीमिया से पीड़ित होने पर पहले अपने चिकित्सक से सलाह लेना उचित होगा और उनके द्वारा सुझाए गए उपाय का पालन करना चाहिए। यह सुनिश्चित करेगा कि उचित और सुरक्षित उपचार किया जाए और एनीमिया की समस्या समय पर हल हो।

एनीमिया से संबधित भ्रांतियां और तथ्यों द्वारा खंडन :

1. महिलाएं शारीरिक शक्ति को प्राप्त नहीं कर सकती हैं : यह एक गलत तथ्य है कि महिलाएं एनीमिया के कारण शारीरिक शक्ति को प्राप्त नहीं कर सकती हैं। एनीमिया उपचार के बाद, यदि महिलाएं सही आहार और पोषक तत्वों का सेवन करती हैं, तो उनकी शारीरिक शक्ति बढ़ती है और वे व्यायाम और रोजमर्रा की गतिविधियों को सहजता से कर सकती हैं। यह सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है कि वे अपने चिकित्सक से सलाह लें और सही उपचार का पालन करें।

2. बिना वैद्यकीय सलाह के सही आहार लेना उपयोगी है : यह भी एक तथ्य है कि एनीमिया में सही आहार का सेवन करना वैद्यकीय सलाह के बिना उपयोगी है। एनीमिया के लिए सही आहार का सेवन करना बहुत महत्वपूर्ण है, लेकिन इसके लिए आपको अपने चिकित्सक से सलाह लेनी चाहिए। एक व्यक्ति के शारीरिक स्वास्थ्य, एनीमिया के स्तर, और अन्य संबंधित कारकों के आधार पर उचित आहार का चयन करना जरूरी होता है। इसलिए, विशेषज्ञ चिकित्सक के साथ सलाह लेना अत्यंत महत्वपूर्ण है।

3. एनीमिया को लापरवाही से लेना : यह भी एक गलत तथ्य है कि एनीमिया को लापरवाही से लेना सही है। एनीमिया एक समस्या है जिसका समय पर पता नहीं चलना और उसका उचित उपचार न करना गंभीर परिणाम दे सकता है। अगर किसी को एनीमिया के लक्षण दिखाई दे रहे हैं या उसे एनीमिया से पीड़ित होने का संदेह है, तो वह तत्काल चिकित्सक से संपर्क करें और उचित उपचार का समय पर उपयोग करें। इससे संबंधित जोखिमों को कम किया जा सकता है और व्यक्ति का स्वास्थ्य सुरक्षित रह सकता है।

बालकों में सुवर्णप्राशन संस्कार-आयुर्वेद का वरदान

डॉ पल्लवी जोशी[1]
डॉ हरीश कुमार सिंघल[2]
एवं डॉ प्रेम प्रकाश व्यास[3]

आजकल के भागदौड़ भरे जीवन में प्रत्येक माता–पिता की एक इच्छा होती है कि उनका बच्चा शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक स्तर पर सर्वश्रेष्ठ हो, इसके लिये वे कोई भी मूल्य चुकाने का भाव रखते हैं, परन्तु यह चमत्कार इतना सरल नहीं है क्योंकि यह सब प्राप्त करने के लिये सभी बच्चों का गर्भकालीन आरोग्य व जन्मोपरान्त आरोग्य दोनों ही उत्तम होने चाहिए। गर्भकालीन आरोग्य माता के स्वास्थ्य पर निर्भर करता है परन्तु जन्म के उपरांत बालक का आरोग्य उसको मिलने वाले आहार एवं परिस्थितियों पर निर्भर करता है। बच्चों का पालन पोषण ही उसके शारीरिक एवं मानसिक सौष्ठव को प्रभावित करता है, क्योकि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का वास होता है। अतः बालकों के स्वास्थ्य अर्थात् शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के संवर्द्धन हेतु आयुर्वेद में अनेकों स्वास्थ्य संवर्द्धन योगों का वर्णन मिलता है जिन सभी में स्वर्णप्राशन एक अत्यंत चमत्कारी योग है जिसका वर्णन काश्यप संहिता में आचार्य काश्यप के द्वारा किया गया है। यह एक गुणकारी औषध योग है जो न केवल स्वास्थ्य संवर्द्धन करता है अपितु बालक के शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता का भी विकास करता है, जिससे बालक भविष्य में होने वाले संक्रामक रोगों से बचा रहता है, साथ ही उसकी बौद्धिक क्षमताओं में भी प्रभावी वृद्धि देखी जाती है।

स्वर्णप्राशन (Gold Licking) -

आचार्य काश्यप ने सुवर्णप्राशन का वर्णन करते हुये कहा है कि सर्वप्रथम पूर्व दिशा में मुख करके पानी से धोये हुये पत्थर पर पानी के साथ स्वर्ण को घिसना चाहिये, उसके बाद उसमें असमान मात्रा में मधु और घृत मिलाकर बालक को चटाना चाहिये। इस विधि को सुवर्णप्राशन कहते है। आचार्य वाग्भट ने इसमें आंशिक संशोधन करते हुये कहा है कि एक वर्ष तक वचा और सुवर्ण भस्म को अल्प मात्रा में घी और शहद के साथ चटाना चाहिये। आचार्य काश्यप ने काश्यपसंहिता नामक ग्रंथ में बालकों को सुवर्णप्राशन कराने से बालकों को निम्न लाभ मिलते है–

1. सुवर्णप्राशन से बालकों में मेधा(Intellect), अग्नि(Digestive fire) एवं बल (Physical & Mental Strength) की वृद्धि होती हैं।
2. सुवर्णप्राशन बालक को आयुष्य(Longevity), कल्याण(Beneficial), पुण्य(Auspicious), वृष्य (Aphrodisiac) एवं वर्ण्य(Complexion) प्रदान करने वाला होता है।
3. सुवर्णप्राशन का सेवन करने वाले बालकों में ग्रहों द्वारा रोग(Infectious disease due to invading of microbes) उत्पन्न नहीं होते हैं।
4. सुवर्णप्राशन का सेवन करने से बालक एक मास में मेधायुक्त (Intelligent) हो जाता है एवं व्याधियों द्वारा आक्रांत नहीं होता है।
5. यदि बालक को छः मास तक सुवर्णप्राशन करवाया जाता है तो उस बालक की स्मरण शक्ति अत्यंत बढ़ जाती है वह श्रुतधर(very sharp memories even just hearing) हो जाता है अर्थात् सुनी हुयी बातों को धारण करने वाला हो जाता है।
6. आचार्य वाग्भट के अनुसार लेहन का सेवन करने वाले शिशुओं की मेधा शक्ति(Brain Power) और वाणी (Speech improvement) बढ़ती है एवं इन बालकों की राक्षसों से भी रक्षा(Protection from microbes by developing their immunity) होती है।

स्वर्णप्राशन किसको व कब देना चाहिए ?

- स्वर्णप्राशन प्रत्येक बालक को जन्म से लेकर 16 वर्ष की आयु तक प्रत्येक माह पुष्य नक्षत्र दिवस पर उसके बलानुसार मात्रा का निर्धारण कर चिकित्सक की देखरेख में पिलवाना चाहिए।

1. स्नातकोत्तर अध्येत्री, स्नातकोत्तर कौमारभृत्य विभाग, पोस्टग्रेजुएट इंस्टीट्यूट ऑफ आयुर्वेद
2. एसोसिएट प्रोफेसर, स्नातकोत्तर कौमारभृत्य विभाग, पोस्टग्रेजुएट इंस्टीट्यूट ऑफ आयुर्वेद
3. प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष स्नातकोत्तर कौमारभृत्य विभाग, पोस्टग्रेजुएट इंस्टीट्यूट ऑफ आयुर्वेद
डॉ सर्वपल्ली राधाकृष्णन् राजस्थान आयुर्वेद विश्वविद्यालय, जोधपुर

- यद्यपि स्वर्णप्राशन पिलाने का विधान बताते समय आचार्य काश्यप ने प्रातःकाल का विधान बताया है परन्तु खाली पेट या कुछ अन्न ग्रहण करने के लिये नहीं बताया है। चूंकि आचार्य ने स्वर्णप्राशन का प्रातःकाल का विधान बताया है, तो संभवतः खाली पेट इसका पान कराना चाहिये। प्रायोगिक रूप से भी प्रायः यह देखने में आया है कि जो बच्चे प्रातःकाल खाली पेट ग्रहण करते है उनमें इसका ज्यादा प्रभाव मिलता है। यदि खाली पेट पिलाना संभव ना हो तो स्वर्णप्राशन कराने से पूर्व एवं पश्चात् कुछ खिलाने–पिलाने में कम से कम 45 मिनट का अन्तर रखना चाहिये।
- आचार्यो ने स्वर्णप्राशन का विधान प्रतिदिवस के लिये बताया है परन्तु यदि सहजरूप में संभव ना हो सके तो प्रत्येक माह के पुष्य नक्षत्र के दिन पिलाना चाहिये।

पुष्य नक्षत्र ही क्यों– पुष्य नक्षत्र 27 नक्षत्रों में से एक है एवं सर्वश्रेष्ठ माना जाता है इसलिए इसे "Star of Nourishment" भी कहते हैं। पुष्प नक्षत्र में औषधीय शक्ति(Medical Potency) सर्वाधिक होने से पुष्य नक्षत्र में स्वर्णप्राशन विशेष रूप से प्रभावी है, इसलिए पुष्य नक्षत्र सभी नक्षत्रों में सर्वश्रेष्ठ बताया गया है। उस समय शास्त्रों में शुभ कार्य व औषधपान का उल्लेख किया गया है।

वर्तमान में सुवर्णप्राशन औषध की उपलब्धता –

वर्तमान परिवेश में सुवर्णप्राशन के महत्त्व एवं लोकप्रियता को बढते देख अनेकानेक फार्मा कंपनियों में इसको बनाने की दौड़ मची हुयी है। इस दौड के मध्येनजर प्रत्येक माता–पिता के सामने यह प्रश्न होता है कि गुणवत्ता में किस कपंनी का स्वर्णप्राशन सबसे अच्छा एवं प्रभावी है। ऐसी समस्या को उत्पन्न होते देख डॉ सर्वपल्ली राधाकृष्णन् राजस्थान आयर्वेद विश्वविद्यालय, जोधपुर ने वर्ष 2019 में सम्पूर्ण भारतवर्ष के प्रतिष्ठित संस्थानों के बालरोग विशेषज्ञों को एकत्रित कर सुवर्णप्राशन विषय पर दो दिवसीय एक राष्ट्रीय कार्यशाला आयोजित की जिसमें सुवर्णप्राशन के निर्माण, गुणवत्ता इत्यादि विषयों पर गहन चिंतन एवं मनन किया गया।

तत पश्चात् यह तथ्य सामने आया कि स्वर्णप्राशन निर्मित करने हेतु स्वर्णभस्म सर्वाधिक सुरक्षित एवं बेहतर विकल्प है क्योंकि स्वर्ण भस्म के नैनोपार्टिकल मानव शरीर में आसानी से अवशोषित हो जाते हैं और किसी भी प्रकार का दुष्प्रभाव नहीं दिखाते हैं।

इस प्रकार सुवर्णप्राशन में शुद्ध सुवर्णभस्म को निश्चित अनुपात में लेकर मधु एवं विभिन्न औषधियों से साधित घृत के साथ मिलाकर प्रत्येक माह में पुष्य नक्षत्र के दिन पिलाना चाहिये।

सुवर्णप्राशन की मात्रा –

- 6 महीने तक के शिशु के लिए प्रतिदिन 1 बूंद से 2 बूंद तक।
- 6 महीने से 2 वर्ष तक के बच्चों के लिए प्रतिदिन 2 बूंद ।
- 02 से 05 वर्ष तक के बच्चों को 4 बूँद प्रतिदिन ।
- 05 से 10 वर्ष तक के बच्चों को 6 बूँद प्रतिदिन ।
- 10 साल से अधिक आयु में प्रतिदिन 6 बूँदें ।
- आमतौर पर सुबह–सुबह खाली पेट दी जाने वाली इस सीरप को जन्म से लेकर 16 साल की उम्र तक दिया जा सकता है।
- काश्यप संहिता के अनुसार कुशाग्र बुद्धि एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता के विकास के लिए 30 दिनों से 6 महीने तक नियमित रूप से प्रयोग करें।

सुवर्णप्राशन संस्कार की सार्थकता –

सुवर्ण हमारे शरीर के लिए श्रेष्ठतम धातु मानी जाती है और यह धातु ना केवल बच्चों के लिए अपितु यह हर उम्र के लिए उतनी ही फायदेमंद और रोग प्रतिकारक क्षमता बढ़ाने वाली होती है। स्वर्ण भस्म के Antioxidant, Anti-aging, Anti Cancerous, Immunity Booster आदि प्रभाव खोजे जा चुके है तथा यह बच्चों में पूर्णतः दुष्प्रभाव रहित पाई गई है, इसलिए तो स्वर्णप्राशन का हमारे जीवन में सदियों से महत्त्व चला आ रहा है।

इसको शारीरिक और मानसिक विकास में महत्त्वपूर्ण प्रभाव होने के कारण ही शुभ माना जाता है। हमारे ऋषि–मुनियों

का मानना था कि स्वर्ण कैसे भी करके हमारे शरीर में जाना चाहिए चाहे वह पहनने के द्वारा या फिर सोने के बर्तन में खाना खाने के द्वारा जाये। सोना हमारे शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है और साथ में यह बौद्धिक क्षमता भी बढ़ाता है। यह शरीर, मन एवं बुद्धि का उच्च विकास करने वाली धातु है।

डॉ सर्वपल्ली राधाकृष्णन् राजस्थान आयुर्वेद विश्वविद्यालय, जोधपुर के बालरोग विभाग में स्वर्णप्राशन संबंधी कुछ प्रारंभिक शोधकार्य सम्पन हुये हैं जिनसे स्वर्णप्राशन की प्रमाणिकता एवं उसके विभिन्न रोगों के प्रति रोगप्रतिरोधकता आचार्य काश्यप द्वारा वर्णित स्वर्णप्राशन के लाभों को पुनः प्रतिष्ठित करती है। राजस्थान आयुर्वेद विश्वविद्यालय जोधपुर के बालरोग विभाग के द्वारा चलाये जा रहे स्वर्णप्राशन कैम्पों में उमड़ती अभिभावकों की भीड़ इसके द्वारा होने वाले लाभों का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इस प्रकार इसके द्वारा प्राप्त होने वाले समस्त लाभों को एक दृष्टि में निम्न प्रकार समझ सकते है–

- सुवर्णप्राशन बच्चों की रोग प्रतिकार क्षमता बढ़ाता है, जिससे सुवर्णप्राशन लेने वाला बच्चा अन्य बच्चों की तुलना में कम बीमार पड़ता है और यदि बीमार पड भी जाता है तो अल्प औषध से स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करता है।
- स्वस्थ होने के कारण बालक एंटीबायोटिक या अन्य दवाइयों के ना लेने की वजह से वह इन दवाइयों के दुष्प्रभाव से बचपन से बचा रहता है।
- मौसमी बीमारियां जैसे – सर्दी, जुकाम, लू लगना, खांसी, उल्टी, दस्त आदि की समस्या से बचा रहता है।
- सुवर्णप्राशन बच्चों में सुनने, समझने, बोलने आदि शक्तियों का विकास करता है।
- सुवर्णप्राशन बुद्धि व पाचनशक्ति के बल को बढ़ाने वाला और शरीर व मन का तेज बढ़ाने वाला है।
- अगर शिशु को प्रतिदिन सुवर्णप्राशन का सेवन कराया जाए तो वह शिशु 1 महीने में मेधायुक्त बनता है और यह शिशु की भिन्न–भिन्न रोगों से रक्षा भी करता है।
- यदि शिशु को 6 माह तक सुवर्णप्राशन का सेवन कराया जाए तो शिशु की स्मरण शक्ति तीव्रतर की हो जाती है यानी उसे सुना हुआ सब याद रहता है। इसके कारण बच्चे ज्यादा तेजस्वी बनते हैं।
- स्वर्णप्राशन से बच्चे के शारीरिक विकास में बढ़ोतरी होती है।
- शारीरिक और मानसिक विकास समुचित होने की वजह से अधिक तत्पर और बुद्धिशाली बनता है।
- सुवर्णप्राशन में शिशु की पाचन संबंधित कोई समस्या नहीं होती है।
- सुवर्णप्राशन संस्कार बालक के वर्ण में भी निखार लाता है।
- सुवर्णप्राशन संस्कार से वायरल और बैक्टीरियल इनफेक्शन से भी बचाया जा सकता है।
- सुवर्णप्राशन संस्कार से एक शिशु बलवान और सुंदर बनता है।

निष्कर्ष –

सुवर्णप्राशन आयुर्वेद में वर्णित एक ऐसी विधा है जिसके द्वारा देश के भविष्य अर्थात् हमारे बच्चों को शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य प्रदान कर समाज को निरोगी एवं सक्षम बनाया जा सकता है।

उच्च रक्तचाप (हाई बीपी) एक गंभीर समस्या, कारण और बचाव के प्रति जागरूकता

डॉ अंशु शर्मा[1] डॉ आनंद मोरे[2]

भूमिका

उच्च रक्तचाप या हाई ब्लड प्रेशर आधुनिक अस्त व्यस्त जीवन शैली की एक देन है, जो भविष्य में गंभीर स्थिति को जन्म दे सकता है और मृत्यु का कारण भी बन सकता है इसलिए नियमित अंतराल पर रक्तचाप की जाँच की जानी चाहिए ताकि भविष्य में किसी भी स्वास्थ्य सम्बन्धी जटिलताओं को रोकने का समयानुसार प्रबंधन किया जा सके। रोग के निदान, जोखिम कारकों, उससे उत्पन्न जटिलताओं की सही जानकारी होने पर ही उससे बचाव और उसका सही समय पर इलाज के प्रति सचेत हो सकते हैं, और तदनुरूप जीवन शैली में बदलाव ला सकते हैं।

परिचय

रक्तचाप धमनियों की दीवारों पर बहते रक्त से पड़ने वाला दबाव है। वहीं धमनियों की दीवार मोटी और संकुचित होने से रक्त का दबाव ज्यादा हो जाता है, जिसे उच्च रक्तचाप या हाई ब्लड प्रेशर कहते हैं । एक स्वस्थ व्यक्ति में सामान्य रक्तचाप 120/80 mm Hg है। हाई बीपी में प्रेशर 140/90 mm Hg से ऊपर हो जाता है। बीपी की एक बार की बढ़ी हुई रीडिंग उच्च रक्तचाप को तब तक नहीं दर्शाती जब तक वो लम्बे समय तक लगातार बढ़ी हुई न मिले। इसे साइलेंट किलर के रूप में भी जाना जाता है, क्योंकि लंबे समय तक अनुपचारित उच्च रक्तचाप से अंग प्रत्यंगो को क्षति व जीवन के लिए खतरनाक बीमारियां उत्पन्न हो सकती हैं। यह एक जीवन शैली विकार है और दोषपूर्ण आहार की आदतों और दोषपूर्ण जीवन शैली के परिणामस्वरूप होता है। हाई बीपी के लिए आजीवन दवा से बचने के लिए हमें उच्च रक्तचाप के लिए जिम्मेदार जोखिम कारकों का पता होना चाहिए और सतर्क रहना चाहिए। उच्च रक्तचाप से ग्रस्त होने से खुद को बचाने के लिए निवारक कारकों का जानना भी आवश्यक है।

उच्च रक्तचाप के निदान एवं प्रेरक कारक –

- अस्वास्थ्यकर आहार– जंक फूड, कोल्ड ड्रिंक्स, प्रोसेस्ड फूड , तला हुआ मिर्च, मसालेदार भोजन का अधिक सेवन करना।
- मौसमी फलों और सब्जियों का सेवन कम या नहीं करना।
- नमक का अधिक मात्रा में सेवन करना।
- वसा युक्त मांसाहार का सेवन अधिक करना।
- भोजन को अपने समय से ग्रहण नहीं करना।
- भोजन का समय से नहीं पचना, अधिक समय तक अजीर्ण की अवस्था बने रहना।
- मल का समय से शरीर से निष्कासन न होना, कब्ज की अवस्था बने रहना।
- कैफीन युक्त पदार्थो – चाय, कॉफी आदि का सेवन अधिक करना।
- सम्यक नींद न लेना, रात में अधिक देर तक जागना , खाने के बाद दिन में सोना।
- हाई बीपी का पारिवारिक इतिहास।
- शारीरिक निष्क्रियता।
- अधिक तनाव में रहना (तनाव शरीर में कुछ रासायनिक परिवर्तन लाता है जो धमनियों में उच्च दबाव का कारण बनता है)
- वजन का अधिक बढ़ना।
- लंबे समय तक शराब और सिगरेट का अधिक सेवन धमनियों में सिकुड़न कर रक्त के उच्च दबाव का कारण बनता है।
- लम्बे समय से मधुमेह, किडनी रोग, किडनी के इन्फेक्शन , हार्मोनल असंतुलन जैसे–हाइपोथायरायडिज्म, हाइपरथायरायडिज्म, एक्रोमेगाली, कुशिंग सिंड्रोम, हाइपर एल्डोस्टेरोनिज्म जैसी बिमारिओं से ग्रस्त रहना।
- लम्बे समय से स्टेरॉइड्स और गर्भ निरोधक दवाओं का सेवन करना।

उच्च रक्तचाप के सामान्य लक्षण

1. पीएचडी स्कॉलर, रोग निदान एवं विकृति विज्ञान विभाग, अखिल भारतीय आयुर्वेद संस्थान
2. प्रोफेसर, हेड ऑफ डिपार्टमेंट, रोग निदान एवं विकृति विज्ञान विभाग, अखिल भारतीय आयुर्वेद संस्थान

- सिर में भारीपन रहना या सिरदर्द होना।
- चीजों को सीखने और विश्लेषण करने में दिक्कत आना।
- चक्कर आना, आँखों के आगे अँधेरा छाना।
- पसीना अधिक आना, दिल की धड़कन अधिक होना।
- मन का अधिक चिंताग्रस्त रहना।
- साँस का अधिक फूलना।
- आँखों में लालिमा आना।
- नाक से खून आ जाना।
- नींद का न आना।
- हमेशा बेचैनी बने रहना।
- याददास्त कमजोर होना।
- आँखों से धुंधला दिखाई देना।

उच्च रक्त चाप से होने वाले उपद्रव

लंबे समय तक अप्रबंधित उच्च रक्तचाप भविष्य में कई स्वास्थ्य जटिलताओं को जन्म दे सकता है, इन जटिलताओं में शामिल हैं –

- दिल का दौरा और दिल की विफलता (heart attack and heart failure), हृदय सम्बंधित रोग होना।
- हृदय का आकार बढ़ जाना।
- ब्रेन हैमरेज (दिमाग की नस फटना)।
- किडनी सम्बंधित रोग, किडनी का खराब होना।
- धमनी की दीवार में असामान्य उभार (एन्यूरिज्म) का निर्माण जो फट भी सकता है और गंभीर स्थिति उत्पन्न कर सकता है।
- आंख में उच्च रक्तचाप से रेटिनोपैथी, जिससे लंबे समय में अंधापन हो सकता है।
- शरीर के किसी एक अंग, आधे भाग या सम्पूर्ण शरीर का सुन्न, निष्क्रिय या लकवा हो जाना।
- शरीर के कुछ विशिष्ट अंगों का क्षतिग्रस्त होकर क्रिया करने में असमर्थ हो जाना – ब्रेन, हार्ट और किडनी इसमें प्रमुख हैं।

उच्च रक्तचाप से बचाव के उपाय एवं पथ्य पालन

किसी भी रोग से बचने के लिए निदान परिवर्जन का पालन करना किसी भी चिकित्सा से बेहतरीन विकल्प है क्यूंकि रोग होने पर उसके इलाज के लिए कोशिश करने से अच्छा है, कि रोग को होने ही नहीं दिया जाये, जिसके लिए उसके बचाव का समाधान खोजना और उसके बारे में सम्पूर्ण जानकारी रखने से हम रोग से तो बच ही सकते हैं, साथ ही भविष्य में होने वाले उसके खतरनाक दुष्परिणामों से भी बच सकते हैं। इसलिए,यहाँ कुछ उपाय बताएं जा रहे हैं, जिसे पालन करने से एक स्वस्थ व्यक्ति रोग से बच सकता है और रोगी व्यक्ति भी पालन करने से रोग का बेहतर प्रबंधन कर सकता है व गंभीर परिणामों से बच सकता है –

- पौष्टिक संतुलित आहार का सेवन करना।
- जंक फूड, कोल्ड ड्रिंक्स, प्रोसेस्ड फूड, तला हुआ मिर्च–मसालेदार भोजन का सेवन कम करें या बिल्कुल न करें।
- भोजन में नमक का सेवन नियमित रखें, बीपी अधिक होने पर अपने चिकित्सक से अपनी नमक की सही मात्रा का निर्धारण कराएं।
- शराब का सेवन और सिगरेट स्मोकिंग का त्याग करें।
- तनाव ग्रस्त परिस्थितियों से दूर रहें और संभव न हो सके तो तनाव को अपने ऊपर हावी न होंने दें, हमेशा सकारात्मक रवैया रखें ।
- वजन को नियंत्रित रखें।
- नींद की गुणवत्ता का ध्यान रखें, समय से सम्यक नींद लें।
- शारीरिक गतिविधिओं को ठीक रखें, योगा और व्यायाम को अपनी दिनचर्या में शामिल करें–जॉगिंग, वॉकिंग, स्विमिंग और साइकलिंग जैसे साधारण व्यायाम कर सकते हैं।
- हाई बीपी की अवस्था रहने पर अधिक वजन न उठाएं, कठिन व्यायाम न करें।

- अपने बीपी को नियमित जाँच कराएं और सामान्य रीडिंग से कुछ परिवर्तन लगातार बना रहे तो अपने डॉक्टर से परामर्श जरूर लें ।

उपसंहार

उच्च रक्तचाप के उपरोक्त कारणों, उससे उत्पन्न दीर्घकालीन गंभीर परिणाम और उसके बचाव के बारे में उचित जानकारी होने पर न केवल इस बीमारी को होने से रोका जा सकता है और यदि ये बीमारी हो जाये तो उसका उचित प्रबंधन भी किया जा सकता है। ऐसा शास्त्रों में वर्णित है की निदान परिवर्जन (कारणों का परित्याग) किसी भी रोग के होने पर उसकी चिकित्सा करने से एक बेहतर विकल्प है, जिसके लिए उसके कारणों के प्रति जागरूक होना आवश्यक है।

भ्रांतियां

1. बीपी की मेडिसिन रोज खाना जरूरी नहीं जब बढ़ेगा तब खा लेंगे ।

इस तरह की सोच रखना स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ है। बीपी की मेडिसिन को नियमित रूप से लेना आवश्यक है, और साथ ही बीपी मॉनिटरिंग करना भी आवश्यक है।

2. बीपी की मेडिसिन नियम से लेना जरूरी नहीं।

बीपी की मेडिसिन नियम से नहीं लेने पर हार्ट , किडनी पर बुरा असर पड़ता है जिससे हार्ट और किडनी के रक्त प्रवाह में बाधा हो सकती है और हार्ट की माँसपेशियाँ भी शिथिल हो सकती हैं ।

3. बीपी मेडिसिन लेते रहेंगे तो परहेज जरूरी नहीं ।

किसी भी रोग में परहेज चिकित्सा के समान ही पालन करने योग्य होता है। चिकित्सा तभी फलदायी है जब परहेज या पथ्य का पूर्ण रूप से पालन हो। परहेज से रोग के कारणभूत द्रव्यों को शरीर में संचित होने से रोका जा सकता है ।

रोग प्रतिरोधक क्षमता एवम् आहार-विहार

वैद्य अवधेश शांडिल्य

कुछ समय पूर्व कोरोना एक भयावह महामारी के रूप में सम्पूर्ण विश्व में फैला हुआ था । अमेरिका, इटली, फ्रांस, ब्रिटेन तथा भारत जैसे विकसित देशों को भी इस अतिसूक्ष्म विषाणु ने अपने कुप्रभाव से घुटनों पर ला दिया । भारत में भी इस महामारी ने व्यापक रूप से अपने पैर पसारे थे।

इस संकट काल में सभी ने शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता की महत्ता को समझा है । विश्व भर के वैज्ञानिकों ने यह माना है कि रोग प्रतिरोधक क्षमता का मजबूत होना इस विषाणु के खिलाफ़ लड़ाई में सबसे महत्त्वपूर्ण घटक है। आधुनिक जीवनशैली तथा पथ्य–अपथ्य की चिंता छोड़ विभिन्न औषधियों पर निर्भरता बढने से जन सामान्य में रोग प्रतिरोधक क्षमता को मजबूत करने की आदत लुप्तप्रायः हो गयी थी । परंतु कोरोना काल के बाद रोग प्रतिरोधक क्षमता बढाने के लिये पुनः विशेष जोर दिया जा रहा है। इस हेतु विभिन्न प्रकार की रसायन औषधियों के सेवन का सुझाव दिया जा रहा है एवम् आम व्यक्ति इन सुझावों व चिकित्सकीय सलाहों पर अमल कर इसका सेवन भी कर रहा है ।

आखिर रोग प्रतिरोधक क्षमता है क्या ??
क्या वह स्वभाविक रूप से देह में विद्यमान रहती है ??
इस क्षमता का निर्माण केवल औषधियों से होता है ??
अथवा उसकी कोई स्वाभाविक उपस्थिति शरीर में रहती है ??

आयुर्वेदीय मतानुसार हम जो प्रतिदिन आहार सेवन करते हैं, उसके पाचन उपरांत उत्पन्न होने वाले रस से शरीर में उपस्थित सातों धातुओं (रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र) का निर्माण होकर शरीर का पोषण होता है। इन्हीं सातों धातुओं के सार रूप में परम् सूक्ष्म स्वरूप में एक द्रव्य ओज बनता है। आयुर्वेद के मत से यही ओज शरीर के अंदर विद्यमान रहकर व्याधिक्षमत्व बल अर्थात् रोग प्रतिरोधक क्षमता के रूप में कार्य करता है।

इस ओज के निर्माण से पूर्व शरीरस्थ सातों धातुओं का सम्यक् रूप से निर्माण आवश्यक है और इन धातुओं का सम्यक् निर्माण तीन तत्वों पर निर्भर करता है –

1. उचित मात्रायुक्त आहार 2. आहार का पाचन शक्ति द्वारा सम्यक् पाचन 3. उचित विहार

ये तीनों पक्ष आपस में एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं। अगर हम पाचन शक्ति की समीक्षा करते हुए, ऋतु के अनुसार पौष्टिक तथा मात्रायुक्त आहार का सेवन करेंगे तो हमारे शरीर के रोग प्रतिरोधक क्षमता अर्थात ओज का भी सम्यक् निर्माण होता रहेगा और हमें बाहर से रोग प्रतिरोधक औषधियों का सेवन करने की आवश्यकता नहीं होगी।

आहार शुद्ध हो, आहार मात्रा पाचन शक्ति के अनुरूप ही ली गयी हो, तब ही आहार का सम्यक् लाभ पहुँचता है। परन्तु आहार सेवनोपरान्त यदि हम दैनिक कार्यों (विहार) पर ध्यान नहीं देंगे तो वह शुद्ध आहार का भी सम्यक् रूप से पाचन नहीं होगा। इस लिए शास्त्र वर्णित दिनचर्या व ऋतुचर्या के अनुरूप आहार–विहार ओज प्राप्ति के महत्वपूर्ण घटक हैं–

1. ब्रह्म मुहूर्त जागरण : ब्रम्ह मुहूर्त में उठना बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इस समय में उठकर हमें शुद्ध वायु, शुद्ध जल, शुद्ध भूमि प्राप्त होती है। इसके साथ–साथ शरीर की चय – अपचय प्रक्रिया में इस काल का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। वात दोष का काल होने से इस समय में उठकर मलोत्सर्ग करना चाहिए । यह काल ज्ञान प्राप्ति हेतु भी उत्तम बताया है।

2. नित्य मात्रा पूर्वक व्यायाम : जो शरीर को स्थिरता प्रदान करे वह व्यायाम है । नित्य व्यायाम करना, व्यक्ति को सभी रोगों से दूर रखता है परन्तु व्यायाम को मात्रा से अधिक करने से शरीर को नुकसान की प्राप्ति होती है। अतः व्यायाम तथा प्राणायाम योग्य तथा प्रशिक्षित शिक्षक के निर्देशन में करना चाहिए, अन्यथा यह विपरीत फलदायी भी हो सकता है।

असिस्टेंट प्रोफेसर, स्नातकोत्तर स्वस्थवृत्त एवं योग विभाग, पी.जी.आई.ए., जोधपुर

3. उचित काल तथा उचित मात्रायुक्त भोजन लेना : भोजन की मात्रा (Quantity) उचित होनी चाहिए तथा काल (Frequency) भी निर्धारित होना चाहिए । स्वस्थ रहने के लिए व्यक्ति को दिन में दो बार ही भोजन करना चाहिए तथा आहार मात्रा अपनी पाचनशक्ति के अनुरूप ही लेनी चाहिए।

नरो हिताहारविहारसेवी समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः ।
दाता समः सत्यपरः क्षमावानाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः ॥ (चरक संहिता)

अर्थात् नित्य हितकारी आहार–विहार का सेवन करने वाला, विवेकवान, विषयो में अनासक्त, दान देने वाला, सत्य बोलने वाला, क्षमावान एवं प्रामाणिक विद्वानों के उपदेश मानने वाला व्यक्ति कभी रोगग्रस्त नहीं होता है।

जनपदोध्वंशीय काल (Epidemic) में सभी लोगों की रोग प्रतिरोधक क्षमता दूषित विचार, दूषित वायु, दूषित जल, दूषित वातावरण तथा दूषित काल के कारण स्वाभाविक रूप से कम हो जाती है। फलस्वरूप महामारी फ़ैल जाती है। इस समय में रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने हेतु नित्य सेवनीय आहार के साथ साथ रसायन द्रव्यों का भी सेवन करना चाहिए। इन द्रव्यों में सबसे श्रेष्ठ गिलोय, अश्वगंधा तथा आंवला है। इन तीनों द्रव्यों का चिकित्सकीय निर्देशानुसार निर्धारित मात्रा में सेवन करने से रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ा कर महामारी के दुष्प्रभाव से बचाया जा सकता है।

सम्पूर्ण लेख का सार स्वरुप उद्देश्य यह है कि हमें वर्ष भर दिनचर्या तथा ऋतुचर्या के प्रति सचेष्ट रहकर उचित आहार–विहार सेवन कर अपनी सहज प्राकृतिक रोग प्रतिरोधक क्षमता को निरंतर रूप से प्रबल रखने का प्रयास करना चाहिए। किन्हीं व्यक्तियों में किसी कारण स्वाभाविक रोग प्रतिरोधक क्षमता कम होने पर रसायन औषधियों का उपयोग करना चाहिए। अन्यथा स्वस्थ व्यक्ति में ओज वृद्धि हेतु औषध अभ्यास एक अनुचित प्रथा है।

दुग्ध तथा दुग्ध उत्पादों के गुण कर्म तथा प्रयोगः आयुर्वेदीय दृष्टिकोण एवं वैज्ञानिक समीक्षा

डॉ दीपिका पाण्डेय[1] डॉ शिवानी घिल्डियाल[2]

"अमृतं वै गव्यं क्षीरमित्याहः त्रिदशाधिप, तस्माद् ददातिं यो धेनुममृतं स प्रयच्छति"

संस्कृत महाकाव्य महाभारत में गाय के दूध को 'अमृत' की संज्ञा देते हुए कहा गया है कि देवताओं के राजा इंद्र ने गो दुग्ध को अमृत तथा गोदान को अमृत दान के समान माना है। दुग्ध व उसके उत्पादों के इतिहास को देखा जाये तो वेदों से लेकर आधुनिक शास्त्रों में इनके गुणों का पर्याप्त वर्णन मिलता है। ऋग्वेद के अनुसार गाय अपने दूध में उन औषधीय जड़ी–बूटियों के उपचारात्मक और रोगनिरोधी प्रभाव प्रदान करती है जिनका वह सेवन करती है। इस प्रकार गाय के दूध का उपयोग शारीरिक संवर्धन, बीमारियों के रोकथाम तथा चिकित्सा के लिए भी किया जाता रहा है। शतपथ ब्राह्मण में दुग्ध को ही मनुष्यों का प्रधान अन्न माना गया है । सुश्रुत संहिता के अनुसार दुग्ध बल कारक, शुक्र वर्धक, मेधा वर्धक व आयुवर्धक है । आहार विज्ञान पर लिखी गयी मध्यकालीन साहित्य की रचना क्षेमकुतुहल, आहार के अंतर्गत दूध के उत्पादों को शामिल करने के महत्व पर बल देती है, इसमें दूध और दूध के उत्पादों का उपयोग करके सैकड़ों व्यंजनों का वर्णन किया गया है। शास्त्रीय आयुर्वेदिक साहित्य में अलग–अलग अध्यायों के तहत दूध और दूध के उत्पादों के विस्तृत गुणों और उपयोगों का वर्णन किया गया है। साथ ही इन उत्पादों के उपयोग के लिए आवश्यक सावधानियां भी बताई गई हैं। आयुर्वेद में जन्म से ही सात्म्य होने के कारण दुग्ध का अभ्यास मनुष्यों के लिए हितकारी बताया गया है ।
आधुनिक दृष्टिकोण से भी दुग्ध पूर्ण आहार है । शरीर–संबंधन के लिए जिन–जिन संगठनों की आवश्यकता होती है वे सभी दुग्ध में पाए जाते हैं । इसमें उच्च गुणवत्ता वाले प्रोटीन – कैसिइन और व्हे प्रोटीन, नेचुरल फैट्स का सबसे जटिल मिश्रण, और आसानी से पचने वाला शुगर का सबसे सरल रूप – लैक्टोज होता है। दूध में मौजूद विटामिन और खनिज इसके पोषण स्तर को और बढ़ा देते हैं। दूध में कैल्शियम, फास्फोरस, जिंक, मैग्नीशियम, सेलेनियम आदि खनिज होते हैं। दूध में पाए जाने वाले विटामिन में, विटामिन ए, बी2 और बी12 शामिल हैं और यह विटामिन डी से भरपूर होता है। दुग्ध और दुग्ध से बने पदार्थ जैसे दही, छाछ, मक्खन, घी भारत में प्राचीन काल से ही दैनिक आहार का एक हिस्सा हैं। आजकल जहाँ आधुनिकता मनुष्य को वीगनवाद (पशु उत्पादों के उपयोग से परहेज रखना) की ओर आकर्षित कर रही है वही दूसरी ओर आयुर्वेदिक विज्ञान प्राचीन काल से ही दुग्ध व उसके विकारों के विभिन्न स्वास्थ्य लाभ पर प्रकाश डालता रहा है।

आयुर्वेद अनुसार दुग्ध के सामान्य गुण

आयुर्वेद के अनुसार, दूध विशेष और अद्वितीय पोषण प्रदान करता है जो किसी अन्य प्रकार के भोजन से प्राप्त नहीं किया जा सकता। ठीक से पचने पर दूध शरीर को पोषित करता है तथा सभी दोषों को संतुलित करने में मदद करता है। प्रायः दुग्ध रस में मधुर, गुण में स्निग्ध व पचने के बाद शरीर में शीतलता प्रदान करने वाला, शरीर की वृद्धि करने वाला, मन को अपना कार्य करने की शक्ति देने वाला व श्रम नाशक है । दुग्ध के सामान्य गुणों के साथ–साथ आयुर्वेद ग्रंथों में गाय, भैंस, बकरी आदि के दुग्ध के विशिष्ट गुणों का भी वर्णन है ।

गो दुग्ध के गुण

गाय के दुग्ध को सभी दुग्धो में उत्तम माना गया है, यह जीवनीय शक्ति को बढ़ाने वाला सबसे उत्तम रसायन, वात पित्त तथा रक्त के विकारों को नष्ट करने वाला, निरंतर सेवन करने वालों की वृद्धावस्था तथा समस्त रोगों का शमन करने वाला होता है । गाय के वर्ण के भेद से भी कृष्ण वर्ण की गाय का दुग्ध सबसे लाभकारी बताया गया है । जो गाय, चारे के साथ अन्न भी खाती है उसका दूध स्वस्थ मनुष्यों के लिए लाभकारक है तथा जो गाय भूसा, घास या कपास का बीज खाकर दूध देती है उनका दूध रोगियों के लिए हितकारी है किन्तु, हाल ही में ब्याही हुई अर्थात छोटे बछड़े या मृत बछड़े की गाय का दुग्ध तीनों दोषों को दूषित करने वाला होता है इसलिए उसका प्रयोग करने से बचना चाहिए।

भैंस के दुग्ध के गुण

गाय के दूध की अपेक्षा अधिक मधुर, स्नेह युक्त, निद्रा लाने वाला तथा तेज असहनीय भूख को नष्ट करने वाला होता है । भैंस के दूध में पानी की मात्रा कम होती है और इसलिए यह गाय के दूध की अपेक्षा अधिक गाढ़ा होता है व इसमें गाय के दूध की तुलना में अधिक प्रोटीन और कैल्शियम होता है। हालाँकि, इसमें वसा और कैलोरी की उच्च मात्रा इसे कम आकर्षक बनाती है। इसलिए, कसरत का अभ्यास करने वाले लोगों के लिए भैंस का दूध अधिक हितकारी होता है।

बकरी के दुग्ध के गुण

गाय के दुग्ध के समान गुणों वाला पचने में हल्का, दस्त में मलों को बांधने वाला व क्षय के रोगियों के लिए विशेष रूप से हितकर है।
आयुर्वेदिक ग्रंथो में ऊंटनी, घोड़ी, हथिनी, गधी, भेड़ी व स्त्री के दुग्ध के गुण भी वर्णित हैं किन्तु व्यव्हार में वह कम प्रचिलित हैं ।
प्रयोग करने की विधि से सम्बंधित महत्वपूर्ण बातें

1. गाय का धारा उष्ण दुग्ध (दुहने के समय जो उष्णता रहती है उससे युक्त) उत्तम कहा गया है । परन्तु यदि दूध दुहने के बाद शीतल हो गया है तो उसको उबाल कर पीना ही शरीर के लिए हितकारी होता है, कच्चे दुग्ध में वायुमंडल की खराब गैसें, धूलिकण व सूक्ष्म जीवाणु प्रविष्ट होकर उसे दूषित करते हैं ऐसा दुग्ध पीने पर कोष्ठ अग्नि को मंद करता है व रोग उत्पन्न करता है, दूध को गर्म करने से इसकी आणविक संरचना बदल जाती है जिससे यह मानव उपभोग के लिए बहुत आसान हो जाता है ।

1. एमडी स्कॉलर,
2. असिस्टेंट प्रोफेसर द्रव्य गुण विज्ञान विभाग, अखिल भारतीय आयुर्वेद संस्थान, नई दिल्ली

2. तुरंत फ्रिज से बाहर निकाले हुए ठंडे दूध को पीने से बचना चाहिए क्योंकि यह पाचक अग्नि को कमजोर करता है, कम तापमान वाले पदार्थों का प्रभाव सीधे वेगस तंत्रिका पर पड़ता है, जिससे हृदय की गति कम हो जाती है।
3. प्रातःकाल में निकाला दुग्ध पचने में भारी व शीतल होता है क्योंकि रात्रि में चन्द्रमा का प्रभाव रहता है अथवा पशु चलने फिरने का श्रम नहीं करते हैं, जबकि संध्या के समय निकाला हुआ दुग्ध वात का नाशक थकावट को दूर करने वाला व नेत्रों के लिए हितकर होता है क्योंकि सूर्य की किरणें पड़ते रहती हैं एवं व्यायाम तथा वायु का सेवन होता रहता है।

समय विशेष में दूध पीने के विशेष गुण :

1. सुबह 10 बजे तक दुग्ध पान वीर्य वर्धक तथा धातु पोषक है ।
2. दिन में दुग्ध पान बल कारक माना जाता है ।
3. रात्रि में दुग्ध पान दोषों को शमन करने वाला व नेत्रों के लिए हितकर हैं ।

विरुद्ध आहार का सिद्धांत–

कुछ खाद्य–पदार्थ स्वभाव से ही हानिकारक होते हैं। जबकि कुछ खाद्य पदार्थ ऐसे होते हैं जो अकेले गुणकारी और स्वास्थ्य–वर्धक होते हैं, लेकिन जब इन्हीं पदार्थों को किसी अन्य खाद्य–पदार्थ के साथ लिया जाए तो ये फायदे की बजाय सेहत को नुकसान पहुँचाते हैं। ये ही विरुद्ध आहार कहलाते हैं। विरुद्ध आहार का सेवन करने से कई तरह के रोग होने का खतरा रहता है। क्योंकि ये रस, रक्त आदि धातुओं को दूषित करते हैं, दोषों को बढ़ाते हैं तथा मलों को शरीर से बाहर नहीं निकालते।

दुग्ध और उसके अन्य विकारों के लिए विरुद्ध आहार सिद्धांन्त सत्य प्रस्थापित होता है जैसे दूध के साथ फल व अन्य खाद्य पदार्थः

1. दूध एक प्रकार का पशु प्रोटीन है जिसका पाचन कोष्ठ के लिए सहज नहीं होता, कुछ फलों के साथ मिलाने पर जठरांत्र पथ में अम्लता और फर्मेंटेशन उत्पन्न होता है। इसलिए खट्टे फलो का दूध के साथ सेवन नहीं करना चाहिए।

2. फलो से निर्मित शेकः अधिकांश फलों में सक्रिय एसिड होते हैं जैसे मैलिक एसिड, टारटरिक एसिड, फोलिक एसिड आदि जो पाचन प्रक्रिया में सहायता करते हैं, लेकिन डेयरी उत्पादों में लैक्टिक एसिड होता है, जो फलों के एसिड के साथ प्रक्रिया करता है। इससे हमारी आंत के अंदर एक रसायनिक प्रतिक्रिया होती है जो आंत की परत को नुकसान पहुंचाती है और लीकी गट सिंड्रोम का कारण बनती है। यह विषैला उत्पाद हमारे रक्त प्रवाह में प्रवेश करता है व विभिन्न अंगों में जमा होकर रोग उत्पन्न करता है मुख्य रूप से त्वचा के रोग।

3. समोसाध्पराठा/खिचड़ी जैसी नमकीन चीजों को भी साथ दूध के साथ सेवन नहीं करना चाहिए।

4. दूध को अन्य प्रोटीन स्रोत जैसे अंडा इत्यादि के साथ नहीं मिलाना चाहिए क्योंकि इससे पाचन संबंधी समस्याएं हो सकती हैं।

5. आयुर्वेद में मांस व मछली का सेवन दूध के साथ निषिद्ध माना गया है इससे कुष्ठ आदि रोगों की उत्पत्ति का वर्णन शास्त्र में है।

दूध स्वतः ही पूर्ण आहार है इसे विरुद्ध गुण वाले पदार्थों के साथ सेवन करने से बचना चाहिए ।

दही के गुणः दही को प्राचीन काल से ही भारत में मंगल सूचक माना गया है, हर मंगल कार्य में दही का प्रयोग किया जाता रहा है, कोई भी शुभ कार्य करने से पूर्व दही–चीनी के सेवन की प्रथा प्रचलित है, दही को जितना पवित्र माना गया है उतना ही शरीर के लिए लाभकारी भी है, यह भोजन में रुचि उत्पन्न करती है, अग्नि को दीप्त करती है, शरीर में उष्णता उत्पन्न करने वाली, मांस को बढ़ाने वाली, मूत्र का कठिनता से निकलना और शरीर के दुबले–पतले होने पर दही का सेवन श्रेष्ठ माना गया है । आयुर्वेद शास्त्र में दही को विभिन्न रोगों में अलग औषधियों के साथ मिला के देने का वर्णन है ।

वर्तमान युग में दही को प्रोबायोटिक का सबसे अच्छा स्रोत माना जाता है, यह आंत्र की झिल्ली को उत्तेजित करके प्राकृतिक प्रतिरक्षा को मजबूत करती है इसके अलावा यह मैक्रोफेज को सक्रिय करती है जो हानिकारक जीवाणुओं से लड़ने में शरीर की मदद करते हैं।

प्रयोग करने की विधि से सम्बंधित महत्वपूर्ण बातें

1. प्रायः शरद (अगस्त मध्य से अक्तूबर मध्य), ग्रीष्म(अप्रैल मध्य से जून मध्य), वसंत (फरवरी मध्य से अप्रैल मध्य) में दही का सेवन वर्जित है। वसंत ऋतु में प्रकृति के प्रभाव से ही कफ की वृद्धि होती है, तथा दही भी कफ बढ़ाती है इसलिए वसंत में दही निषिद्ध है, ग्रीष्म व शरद ऋतु में उष्णता अधिक होती है तथा ठण्डे पदार्थों का सेवन उपयुक्त होता है, दही की तासीर गरम है इसलिए इन ऋतुओं में भी दही का सेवन निषिद्ध है ।
2. हेमंत (अक्तूबर मध्य से दिसम्बर मध्य), शिशिर (दिसम्बर मध्य से फरवरी मध्य), वर्षा (जून मध्य से अगस्त मध्य) ऋतु में दही का सेवन लाभकारी होता है। सर्दी के मौसम में वातावरण में रुक्षता के कारण त्वचा भी रुक्ष हो जाती है व जठराग्नि तीक्ष्ण होती है तथा दही में स्थित स्निग्ध गुण रुक्षता कम करता है और गुरु गुण शरीर को पोषण देता है, वर्षा ऋतु में अग्नि मंद होती है व वात बढ़ जाता है ऐसे में दही का सेवन अग्नि को भी बढ़ाता है व वात को भी शांत करता है।
3. रात्रि में दही नहीं खाना चाहिए क्योंकि दही पचने में गुरु होती है और रात्रि में पाचन तंत्रिका गरिष्ट भोजन को पचाने में असमर्थ होती है ।

4. उबले हुए दूध से बनी हुई दही गुणों में उत्तम होती है यह धातु का पोषण करने वाली, पाचन शक्ति बढ़ाने वाली, बलवर्धक व वात और पित्त को शांत करने वाली होती है, यह शोध के द्वारा भी पाया गया है कि बिना उबले दूध की अपेक्षा उबले हुए दूध की दही में नाइट्रोजन और अमोनिया कम होते है ।

5. दही को कभी गर्म करके प्रयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि यह सभी उपयोगी बैक्टीरिया को नष्ट कर देता है।

6. हालांकि दही कई रोगों में फायदेमंद है फिर भी इसका सेवन रोजाना नहीं करना चाहिए, क्योंकि ज्यादा सेवन से पाचन में अवरोध उत्पन्न करता है व त्वचा के रोग, रक्तस्राव जैसी विभिन्न बीमारियों का कारण बनता है। दही का प्रयोग त्वचा के रोग, एनीमिया, चक्कर आना, पीलिया, मधुमेह, मुख रोग व गाउटी आर्थराइटिस जैसी बीमारियों में वर्जित है ।

आयुर्वेद के अनुसार दही के 5 भेद होते हैं

मंदक	स्वादु	स्वाद्वम्ल	अम्लसंज्ञक	अत्यम्ल संज्ञक
जो दही ठीक से ना जमा हो, रस और गंध में उपयुक्त न हो।	जो दही भलीभांति गाढ़ा, अच्छे से जमा हुआ, मधुर रस युक्त हो और जिसमें अम्ल रस न हो।	मधुर रसात्मक तथा अंत में कषाय रस युक्त दही को स्वाद्वम्ल दही जानना चाहिए।	जिस दही में मधुर रस छिपा हुआ हो और अम्ल रस प्रकट हो रहा हो उसे अम्ल संज्ञक दही जानना चाहिए।	जो दही अधिक खट्टा हो जिसके सेवन से दांत हर्षित हो जाये, रोंगटे खड़े हो व कंठ में दाह उत्पन्न हो ।
ऐसा दही शरीर में तीनों दोषों को बढ़ाता है व दाह उत्पन्न करता है।	ऐसा दही शरीर के स्रोतों को बंद करने वाला, वीर्य वर्धक और मेद व कफ को बढ़ने वाला होता है।	ऐसा दही उत्तम माना गया है।	ऐसा दही अग्नि दीपक व पित्त कफ और रक्त के विकारों को बढ़ने वाला होता है ।	पित्त को कुपित करता है व त्वचा के रोग उत्पन्न करता है ।

एक अध्ययन में दही में नाइट्रोजन और अमोनिया का स्तर पहले दिन की अपेक्षा से सातवें दिन उल्लेखनीय रूप से बढ़ा हुआ मिला जिससे ये सिद्ध होता है की पुराना दही व अत्यम्ल संज्ञक दही स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है ।
दही विभिन्न घटकों से मिलकर बनता है जैसे दही की मलाई, दही का पानी आदि इनके भी गुण अलग–अलग बताए हैं–
दही की मलाई के गुणः दही की मलाई भी दूध की मलाई के सामान वीर्य वर्धक, शरीर की वृद्धि करने वाली व पचने में गुरु होती है ।
दही मण्डः पूर्ण रूप से जमने के बाद दही के ऊपर तरल पदार्थ तैरता है जिसे दही मंड कहते हैं यह बलदायक, लघु, अन्न में रुचि उत्पन्न करने वाला, अवरोध को खत्म करने वाला व संचित मलों को तोड़ने वाला होता है।

दही के सन्दर्भ में विरुद्ध आहार का सिद्धांत :

दही के साथ विभिन्न फल

दही में सक्रिय जीवाणु होते हैं, जो फलों में पाए जाने वाले प्राकृतिक शर्करा और फ्रुक्टोज में फर्मेंटेशन की प्रक्रिया को शुरू कर देते हैं इससे आंत में जीवाणु की वृद्धि हो जाती है और एच.पाइलोरी, कैंडिडा, प्ठै तथा दस्त की समस्या उत्पन्न होती है और इस विषाक्त पदार्थ द्वारा पाचन की क्रिया मंद होकर विभिन्न रोग उत्पन्न होते हैं, इससे सर्दी, खांसी और साइनस की समस्या भी उत्पन्न होती है ।

दही में नमक

दही प्राकृतिक रूप से पित्त व कफ दोष को बढ़ाने वाला होता है यदि उसके साथ नमक का संयोग किया जाएगा तो पित्त के प्रकोप से भविष्य में रोग हो सकते हैं ।

दही में क्या मिला कर खाना चाहिए :

1. शहद : पित्त कफ शामक होने के करण दही में मिलाने से उत्तम गुणों को देने वाला होता है ।
2. घृत : पित्त का उत्कृष्ट शामक होने से दही के साथ मिला कर लेना चाहिए ।
3. मूंग का पानीः वात व रक्त के विकारों में हितकारी ।
4. शक्कर : पित्त शमन व शीतलता उत्पन्न करता है ।
5. आंवलाः अम्ल रस होते हुए भी पित्त का शमन करता है।

तक्र के गुणः दही में पानी मिलाकर उसे मथने से तक्र बनता है, परन्तु आयुर्वेद में दही और तक्र के गुण–कर्म में काफी अंतर बताए गए है । एक ओर दही का नित्य प्रयोग पाचन में अवरोध उत्पन्न करता है, वही दूसरी ओर पाचन सम्बन्धी विकारों में तक्र अमृत के समान कार्य करता है। तक्र रस में मधुर, अम्ल, शरीर में उष्णता उत्पन्न करने वाला, पचने में हलका तथा पाचक अग्नि को दीप्त करता है । आयुर्वेद में तक्र के महत्व को बताते हुए कहा है कि तक्र का सेवन करने वाले व्यक्ति कभी बीमार नहीं पड़ते हैं तथा तक्र के प्रभाव से नष्ट हुए रोग दोबारा कभी उत्पन्न नहीं होते । आधुनिक दृष्टिकोण के अनुसार दही में एक्टिव बैक्टीरियल स्ट्रेन होते हैं जो ऊष्मा के संपर्क में आने पर फर्मेंट हो जाते हैं, इसलिए जब यह जठराग्नि के संपर्क में आते है तो वह अधिक आक्रामक रूप से फर्मेंटेशन करना शुरू कर देते हैं और शीत प्रभाव डालने के बजाय वे वास्तव में शरीर में ऊष्मा उत्पन्न करते हैं। जबकि तक्र बनाने के लिए जैसे ही दही में पानी मिलाया जाता हैं, फर्मेंटेशन की प्रक्रिया रुक जाती है जीरा, धनिया जैसे मसाले मिलाने से तक्र की शोधक व दीपन पाचन शक्ति बढ़ जाती है । यह तक्र छह रस युक्त होता है तथा सभी प्रकृति के लोगों के लिये उपयुक्त है। इसलिए तक्र को दही का सबसे अच्छा विकल्प माना जाता है।

घोल	मथित	तक्र	उदश्वित	छाछ
बिना जल मिलाये यदि मलाई के साथ दही को मथा जाये तो उसे घोल कहते हैं ।	यदि दही की मलाई अलग करके, बिना जल मिलाए ही मथ दिया जाये तो उसे मथित कहते हैं ।	जिस दही में चतुर्थांश जल मिला कर मथा जाये उसे तक्र कहते हैं।	जिस दही में आधा जल मिला के मथा जाये उसे उदश्वित कहते हैं ।	जिस दही में से प्रथम मथकर मक्खन निकाल लिया हो, पुनः उसी में अधिक मात्रा में स्वच्छ जल डालकर फिर मथा जाये तो उसे छाछ कहते हैं ।
वात, पित्त शामक	श्वास, कफ शामक	तासीर में गर्म, पाचक अग्नि को बढ़ाने वाला, कामोत्तेजक, पोषण प्रदान करने वाला और वात को शांत करने वाला होता है।	पित्त, कफ शामक	यह तासीर में ठंडा, सुपाच्य है, थकान, प्यास और वात को कम करता है।

शरीर में हुई दोष दुष्टि के अनुसार तक्र सेवन करने के अलग–अलग नियम शास्त्र में बताए है

वात दोष : सोंठ /सेंधा नमक मिला हुआ तक्र ।
पित्त दोष : शक्कर मिला हुआ तक्र ।
कफ दोष : सोंठ, काली मरिच, पीपर मिला हुआ तक्र ।

तक्र का निषेध : क्षय के रोगी में तथा ग्रीष्म ऋतु, में दुर्बल व्यक्ति तथा दाह, भ्रम के रोगियों को तक्र नहीं पीना चाहिए ।
मक्खन : दही को मथकर तक्र बनाने की प्रक्रिया में दही का स्नेह भाग अलग इकट्ठा हो जाता है जिसे मक्खन कहते हैं, यह सौन्दर्य को उत्पन्न करने वाला, वीर्य वर्धक, बल तथा अग्नि को बढ़ाने वाला, बालक व वृद्ध के लिए हितकर एवं शिशुओं के लिए अमृत सामान गुणकारी है ।

घृत के सामान्य गुण : घी अपने विशिष्ट स्वाद व गुणों के कारण अद्वितीय व प्रसिद्ध फैट का प्रकार है, कम नमी की मात्रा व प्राकृतिक एंटीऑक्सीडेंट की प्रचुरता के कारण काफी समय तक स्थिर रहता है व खराब नहीं होता है, घी को अन्य स्नेहो की तुलना में सबसे बेहतर स्नेह माना जाता है, शोर्ट चौन फैटी एसिड होने के कारण, यह पचने में सहज और रोग प्रतिरोधक शक्ति को बढ़ाने वाला होता हैं, घी विटामिन (ए, डी, ई, के) और आवश्यक फैटी–एसिड का भी एक महत्वपूर्ण वाहक है, शरीर को शीतलता देने वाला व मानसिक शक्ति को बढ़ने में सहायक, रसायन, नेत्रों के लिए हितकर, अग्नि दीपक, शरीर में शीतलता उत्पन्न करने वाला, कांति, लावण्य, स्वर व स्मरण शक्ति को बढ़ाने वाला होता है । घृत जैसे–जैसे अधिक पुराना होता जाता है वैसे–वैसे उसके गुण बढ़ते जाते हैं ।

मानव सभ्यता की शुरुआत से ही दूध व उसके उत्पादों को शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के लिए हितकारी बताया गया है । भारतीय प्राचीन वैदिक ग्रंथों में दूध और उसके उत्पादों के गुणों का विस्तृत वर्णन है, जिसको आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धांतों और प्रमाणों से प्रमाणित किया जा रहा है। दूध को दैनिक संतुलित आहार का सबसे प्राकृतिक और पोषक पदार्थ माना गया है। वर्तमान में पारंपरिक ज्ञान के साथ उन्नत वैज्ञानिक ज्ञान के एकीकरण की अवधारणा को विकसित करने की दिशा में अविश्वसनीय कार्य हो रहे हैं, इसके अलावा, दूध व उसके उत्पादों की चिकित्सकीय भूमिकाओं को समझने की दिशा में नई प्रगति हुई है । अतः आयुर्वेद के परम्परागत अनुभूत ज्ञान के मार्गदर्शन के साथ यदि दुग्ध तथा उसके लाभकारी उत्पादों जैसे दही, तक्र, मक्खन तथा घी का प्रयोग किया जाये तो आधुनिक काल में होने वाले कई शारीरिक तथा मानसिक विकारों से बचा जा सकता है ।

कविता

नश्वर जीवन रे पग पग माथे इणरो साथ जरुरी है,
ज्वर दर्द नाड़ी जेड़ा अनेक कष्टा मेटण रि धुरी है,
आर्यावर्त रो इतिहास आ....वेदा रो सारांश आ..,
पतंजलि जेड़ा पुण्यात्मा रे योगा रो अभ्यास आ..,

रामायण रे काल मे जिणे लाखन ने जीवनदान दियो,
संजीवनी जेडी जड़ी बूटी रो जद उणने मधुपान कियो,
आ ही आधार हाड़ मास रो आ ही हृदय री धड़कन है,
आ ही कुंजी निरोगी काया री आ ही निरोगी तनमन है,

जिण रो बखाण जग जाणे बाता जिण री अनूठी है,
सब रोगा रो एक ही मूल खास अणरी आ खूंटी है,
आडम्बर ना इणरो नाम आई चिकित्सा सांची है ,
देश विदेश री बाकी विद्या सगली इणसूं पाछी है,

कैवे "डॉ.मार्क" आ बात सबा ने समझानी है,
प्राकृतिक चिकित्सा आपा ने घर घर पहुंचाणी है,

सर सु लेकर पाव तक जग में रोग बेरोग घणाई है,
डिब्बा बंद दुकाना मायने बिक रही खूब दवाई है,
पर आ पंचतंत्र पे टिकोडी ईश्वर री विशेष एक दित्सा है
प्रकृति जिणरी पालनहार,वा प्राकृतिक चिकित्सा है,
वा प्राकृतिक चिकित्सा है, वा प्राकृतिक चिकित्सा है।

कवि डॉ. मार्कण्डेय बारहठ
सहायक आचार्य,
विश्वविद्यालय योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा महाविद्यालय, जोधपुर।

आरोग्यम् स्वास्थ्य पत्रिका में विज्ञापन हेतु दरें

मुख्य पृष्ठ के अन्दर वाले पृष्ठ पर :-
रंगीन- सम्पूर्ण पृष्ठ रु. 15000/आधा पृष्ठ रु.10500/चतुर्थ भाग रु. 6000
पश्च पृष्ठ पर :-
रंगीन- सम्पूर्ण पृष्ठ रु. 20000/आधा पृष्ठ रु.12500/चतुर्थ भाग रु. 7000
पश्च पृष्ठ के अन्दर वाले पृष्ठ पर :-
रंगीन- सम्पूर्ण पृष्ठ रु. 15000/आधा पृष्ठ रु.10500/चतुर्थ भाग रु. 6000
उपरोक्त के अतिरिक्त अन्य पृष्ठों पर :-
ब्लैक एण्ड वाईट - सम्पूर्ण पृष्ठ 10000/आधा पृष्ठ रु. 6000/चतुर्थ भाग रु. 4000

विश्वविद्यालय परिसर में विभिन्न स्थानों पर सघन वृक्षारोपण कार्यक्रम

विश्वविद्यालय चिकित्सालय में नि:शुल्क शल्य चिकित्सा शिविर का उद्घाटन

स्वामी स्वरूपानंद गौ सेवा संस्थान, कांकणी, पाली रोड, जोधपुर में नि:शुल्क चल चिकित्सा आयुर्वेद शिविर का आयोजन

कुलपति महोदय द्वारा यूनिवर्सिटी कॉलेज ऑफ होम्योपैथी, केकड़ी का निरीक्षण

राजस्थान हस्तशिल्प मेला 2023, जोधपुर के उद्घाटन समारोह में माननीय मुख्यमंत्री श्री अशोक गहलोत द्वारा विश्वविद्यालय स्टॉल का अवलोकन

षष्ठ दीक्षांत समारोह का विश्वविद्यालय के सुश्रुत सभागार में भव्य आयोजन

मर्मज्ञ – 2023 कार्यशाला

शोध मीमांसा – 2023

प्रथम पूर्व छात्र सम्मेलन-समज्या 2023

युनिवर्सिटी कॉलेज ऑफ़ यूनानी, टोंक में 26 फरवरी 2023 को एक दिवसीय नेशनल सेमिनार का आयोजन

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् राजस्थान आयुर्वेद विश्वविद्यालय
कड़वड़, नागौर रोड, राष्ट्रीय राजमार्ग सं. 65, जोधपुर (राज.)
Phone : 0291-2795312, Fax : 0291-2795300
E-mail : rau_jodhpur@yahoo.co.in
Website : https://department.rajasthan.gov.in/home/dptHome/221

स्वत्त्वाधिकारी डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् राजस्थान आयुर्वेद विश्वविद्यालय, जोधपुर के लिए डॉ. राकेश कुमार शर्मा, एसोसिएट प्रोफेसर, रचना शारीर विभाग द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित तथा भण्डारी प्रिन्टसिटी, 23-ए, इण्डस्ट्रीयल एरिया गली नं. 1, न्यू पावर हाउस के पीछे, डीजल शेड रोड, जोधपुर से मुद्रित एवं डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् राजस्थान आयुर्वेद विश्वविद्यालय, कड़वड़ नागौर रोड, जोधपुर से प्रकाशित। सम्पादक : डॉ. राकेश कुमार शर्मा

भारत सरकार की सेवार्थ

प्रिण्टेड बुक

सेवा में

.....

.....

.....

.....